RNI No. UTTHIN/2016/71922

कविकुंभ

मूल्य 40 रुपए

वर्ष 02 • अंक 17 • अप्रैल 2018

kavikumbh.com

दिल्ली • हरियाणा • मप्र • छत्तीसगढ़ • राजस्थान • उप्र • उत्तराखंड • हिमाचल • पंजाब • जम्मू-कश्मीर • बिहार • झारखंड • ओडिशा • प.बंगाल • असम • महाराष्ट्र • गुजरात • कर्नाटक • तमिलनाडु

शब्द-संपादकीय

'कविकुंभ' आभारी है आप का

जो करे, वही जाने कि ये मर्ज है तो दवा क्या है और अपरिहार्य जरूरत है तो उपाय और संभावनाएं क्या हैं? यह प्रश्न 'कविकुंभ-बीइंग वूमेन' के साझा वार्षिक शब्दोत्सव एवं सम्मान समारोह-2017, 18 से सम्बंधित है। अपनी प्रकाशन-यात्रा के बीते डेढ़ वर्षों से अधिक के समय में मार्च-2017 में पत्रिका का पहला प्रकाशनोत्सव दिल्ली के इंडिया इंटरनेशनल सेंटर में संभव रहा। उसमें देश के प्रतिष्ठित सृजनधर्मियों पद्मश्री लीलाधर जगूड़ी, माहेश्वर तिवारी, पद्मश्री पद्मा सचदेव, असगर वजाहत, बालस्वरूप राही, पद्मश्री अशोक चक्रधर, जहीर कुरैशी, डॉ.नुसरत मेंहदी, राज शेखर व्यास, डॉ. लक्ष्मीशंकर वाजपेयी, हिमालय ड्रग कंपनी के डाइरेक्टर डॉ. एस फारुख आदि की गरिमामय उपस्थिति और सारगर्भित सम्बोधन से हम गौरवान्वित हुए। 'कविकुंभ-बीइंग वूमेन' के साझा संयोजन में एक बार पुनः देश के प्रतिष्ठित कवि-साहित्यकार, पत्रकार, लेखक एवं अन्य सुधी वर्गों के साथ ही वह मित्र-परिवार भी उत्तराखंड की राजधानी देहरादून में सम्मान सहित उपस्थित हो रहा है, जो विगत एक वर्ष की कठिन यात्रा में हमारा अनवरत संबल बना रहा। इस दौरान 'कविकुंभ' की कुशलता और सफलता दोनों, इस विशाल परिवार के स्नेह से ही ऊर्जावान हुई। शब्द मिले, स्नेह मिला। कठिन चुनौतियों के बीच इस दौरान हमसे कई अनजानी चूक भी हुईं तो कई एक सफलताएं और ऐसे आत्मीय भी मिले, जिनके विवेक, श्रम, त्याग और सहयोग ने पत्रिका के सुदीर्घ, कुशल भविष्य का अपेक्षित भरोसा दिया। पत्रिका सशक्त हुई। उसी का सुफल है पुनः संयोजन, दूसरा शब्दोत्सव एवं सम्मान समारोह। इसके लिए हम देश के प्रतिष्ठित कवि-साहित्यकारों, बौद्धिक वर्गों एवं 'कविकुंभ-बीइंग वुमन' परिवार के हृदय से आभारी हैं।

अब, जबकि एक बार पुनः 'कविकुंभ-बीइंग वूमेन' का साझा वार्षिक शब्दोत्सव एवं 'फलक' सम्मान समारोह-2018 उत्तराखंड की राजधानी में हो रहा है, इसका मात्र इतना भर मुख्य प्रयोजन है कि राजधानी दिल्ली भले 'कविकुंभ' का साधन और साध्य हो, यहीं पत्रिका का मातृ-प्रदेश है, जहां के प्रतिष्ठित कवि लीलाधर जगूड़ी, डॉ बुद्धिनाथ मिश्र एवं शीर्ष गीतकार माहेश्वर तिवारी, बल्ली सिंह चीमा आदि का पत्रिका को अनवरत विशेष स्नेह मिलता रहा है। विनम्र निवेदन पर समारोह के लिए पुनः ससम्मान उपस्थित हो रहे ख्यात शायर, लब्ध-प्रतिष्ठ कवि-साहित्यकार माहेश्वर तिवारी, लीलाधर जगूड़ी, नरेश सक्सेना, विष्णु नागर, मंगलेश डबराल, दिविक रमेश, डॉ बुद्धिनाथ मिश्र, बल्ली सिंह चीमा, रामकुमार कृषक, डॉ लक्ष्मीशंकर वाजपेयी, डॉ भारतेंदु मिश्र, लोकप्रिय व्यंग्यकार, शीर्ष पत्रकार रामशरण जोशी, संतोष भारती, जानी-मानी लेखिका रमणिका गुप्ता, कवयित्री पदमा सचदेव, ममता किरण, अलीना इतरत, रेनु हुसैन, चित्रा देसाई, आभा बोधिसत्व, ताजवर सुल्ताना आदि के साथ ही सोमवारी लाल उनियाल, जितेन ठाकुर, गुरदीप खुराना, सुभाष पंत, तृप्ति भट्ट, अशोक कुमार, शंकर क्षेम के हम हृदय से आभारी हैं। कवि आनंद परमानंद, फारूक आफरीदी, जयप्रकाश मानस, डॉ कृष्ण कुमार प्रजापति, डॉ वशिष्ठ अनूप, कमलेश भट्ट कमल, कृष्ण कुमार बेदिल, जय चक्रवर्ती, कृष्ण सुकुमार, डॉ लवलेश दत्त, अवनीश त्रिपाठी, अश्विनी राघव रामेन्दु, पुष्पा सिंह, चंद्रमणि के आगमन की स्वीकृति ने भी 'कविकुंभ' का मान बढ़ाया है। समस्त सृजन-परिवार के प्रति 'कविकुंभ' शब्द-यात्रा कृतज्ञ है।

-रंजीता सिंह

भाषा : हिंदी आवधिकता : मासिक

संपादक
रंजीता सिंह

प्रबंध संपादक
जय प्रकाश त्रिपाठी

अंतर्राष्ट्रीय प्रतिनिधि
अफरोज आलम (कुवैत)
साकिब हुरानी (नेपाल)
फहीम अख्तर (यूनाइटेड किंगडम)

मुद्रक, प्रकाशक, *संपादक रंजीता सिंह द्वारा शिवगंगा प्रिंटिंग प्रेस, 20/1, नेताजी की गली, निकट तिलक रोड, देहरादून से मुद्रित तथा 50, आकाशदीप कॉलोनी, चकराता रोड, देहरादून (उत्तराखंड) 248001 से प्रकाशित।

'कविकुंभ' संपर्क
डाक पता : रंजीता सिंह, 50, आकाशदीप कॉलोनी, चकराता रोड, देहरादून (उत्तराखंड) - 248001
E-mail: kavikumbh@gmail.com

मोबाइल : 7983168101 / 7409969078 / 7250704688

*

करेंट एकाउंट सं - 01001100002926
आई एफ एस सी कोड -
पीएसआइबी0000100
पंजाब एण्ड सिंध बैंक,
राजपुर रोड ब्रांच, देहरादून

'कविकुंभ' से संबंधित विवाद का न्याय-क्षेत्र देहरादून। 'कविकुंभ' में प्रकाशित रचनाओं से संपादक की व्यक्तिगत सहमति आवश्यक नहीं।
प्रकाशित रचनाओं के उपयोग से पहले संपादक, लेखक की पूर्व सहमति आवश्यक होगी।

शब्दनुक्रम

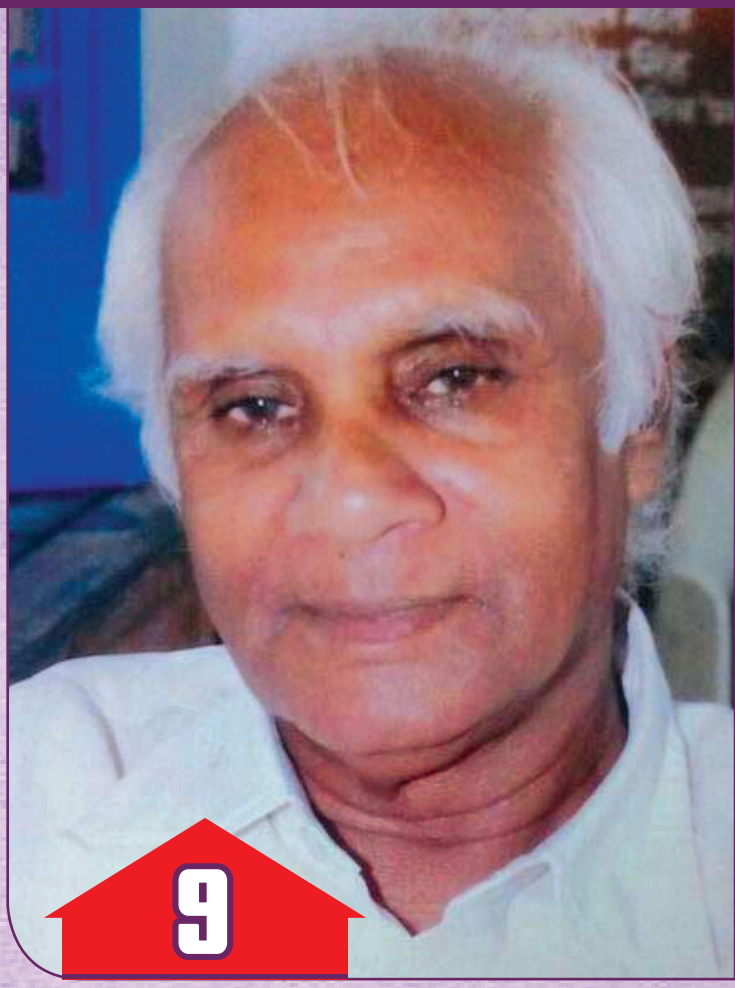

9

शब्द-स्वर

गिरोहों की मिठाई खाकर कविता के इतिहास से ठकुरसुहाती : नचिकेता

18

शब्द-संवाद

उर्दू जबान है क्या, इसमें अधिकतर शब्द तो हिंदी के : आलम खुर्शीद

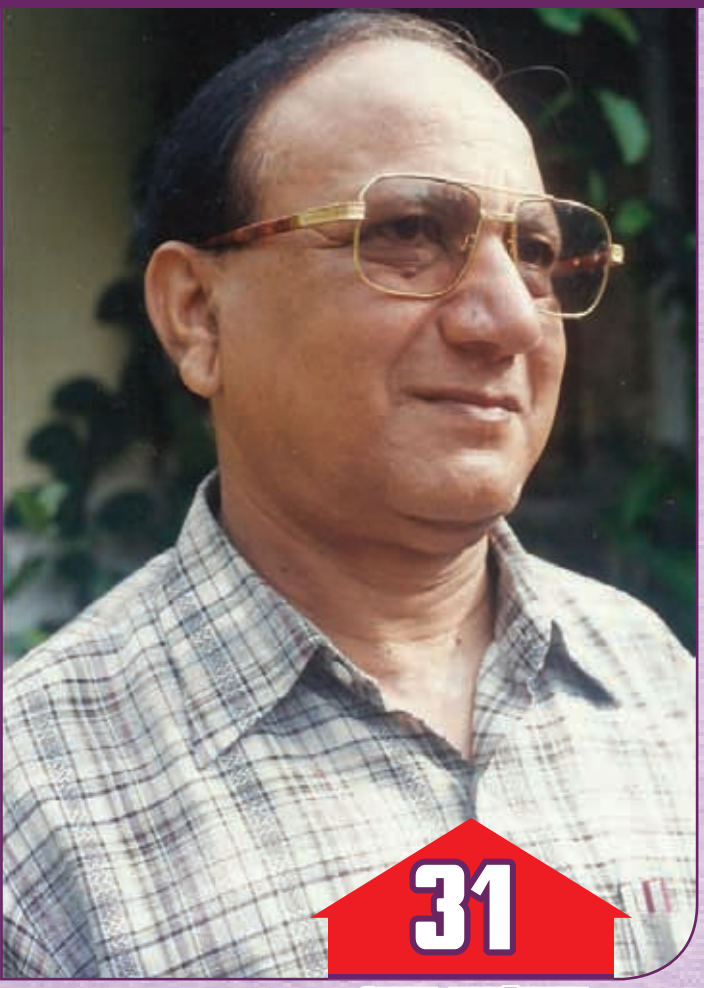

31

शब्द-साधना

उत्तराखंड के शब्द-साधक
डॉ गिरिजाशंकर त्रिवेदी

35

शब्दांचल

रमई काका की पुण्यतिथि पर विशेष:
अइसी कविता ते कौनु लाभ!

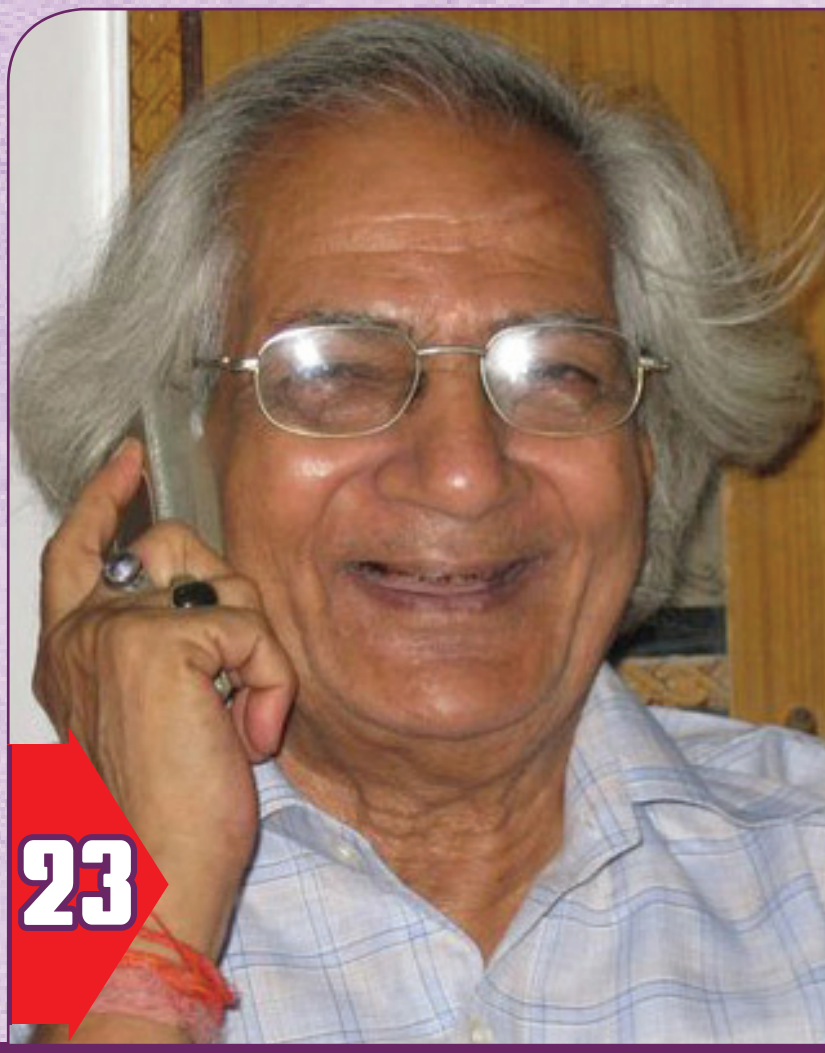

23

माहेश्वर तिवारी, मुनव्वर राना, लीलाधर जगूड़ी, नरेश सक्सेना, डॉ बुद्धिनाथ मिश्र, विष्णु नागर, दिविक रमेश, मंगलेश डबराल, पद्मा सचदेव, लक्ष्मीशंकर वाजपेयी, रमणिका गुप्ता, रामकुमार कृषक, कमलेश भट्ट 'कमल', डॉ वशिष्ठ अनूप, ममता किरण, चित्रा देसाई एवं आभा बोधिसत्त्व

जयंती

केदारनाथ अग्रवाल
(01 अप्रैल)

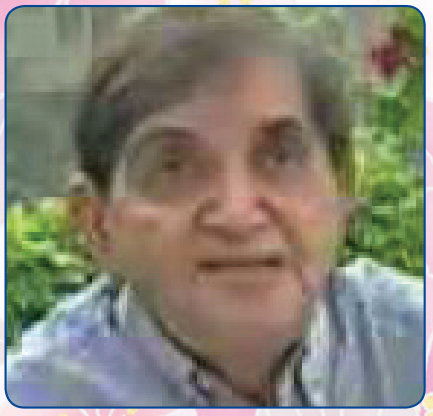

निर्मल वर्मा
(3 अप्रैल)

माखनलाल चतुर्वेदी
(4 अप्रैल)

राहुल सांकृत्यायन
(9 अप्रैल)

गुलशन बावरा
(12 अप्रैल)

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
(15 अप्रैल)

पुण्यतिथि

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय
(4 अप्रैल)

विष्णु प्रभाकर
(11 अप्रैल)

फणीश्वर नाथ 'रेणु'
(11 अप्रैल)

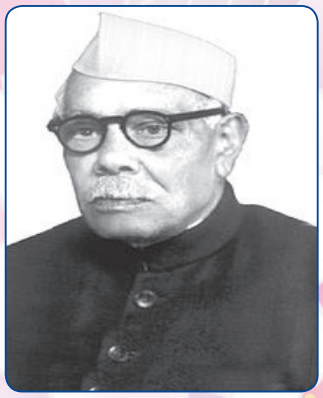

बाबू गुलाबराय एमए
(13 अप्रैल)

गोपाल सिंह नेपाली
(17 अप्रैल)

रमई काका
(18 अप्रैल)

गोपाल सिंह नेपाली
(17 अप्रैल)

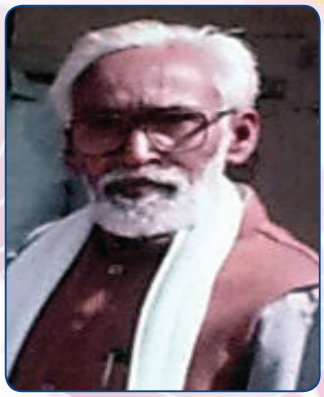

शलभ श्रीराम सिंह
(22 अप्रैल)

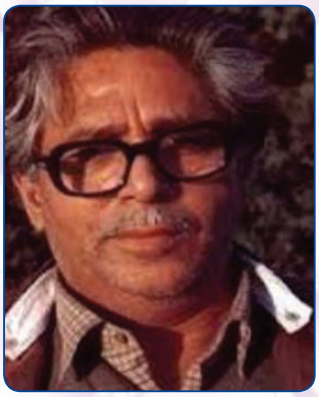

शैलेश मटियानी
(24 अप्रैल)

रामधारी सिंह 'दिनकर'
(24 अप्रैल)

मलयज
(26 अप्रैल)

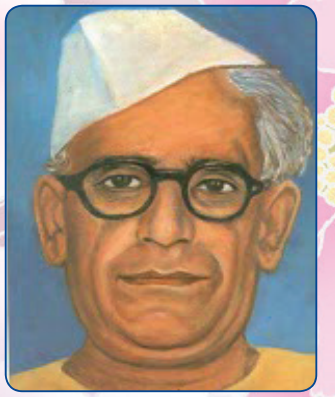

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'
(29 अप्रैल)

01 अप्रैल, स्मृति-शेष

मालवा में गीत मेरे गूँज जाएँ / केदारनाथ अग्रवाल

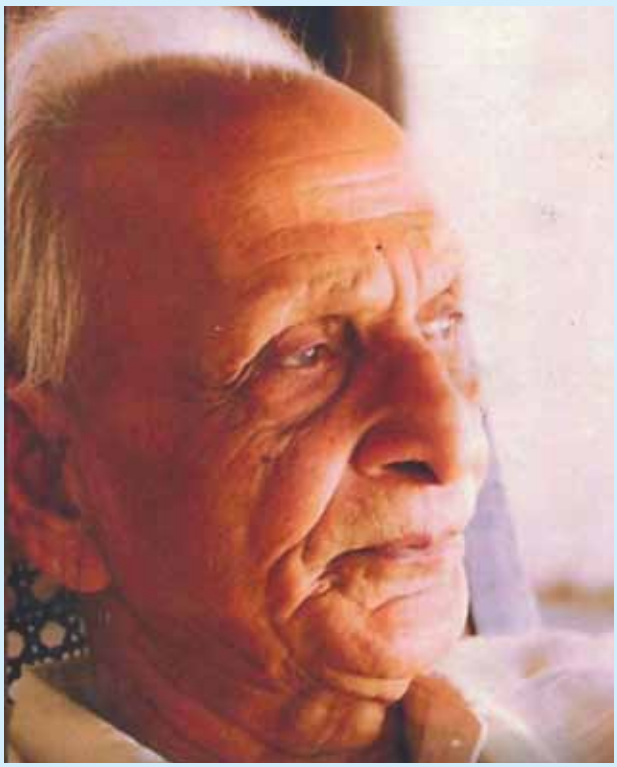

मालवा में गीत मेरे गूँज जाएँ,
मैं यहाँ पर गीत गाऊँ,
वह वहाँ पर घनघनाएँ,
मालवा में आग का डंका बजाएँ।

मालवा में गीत मेरे गूँज जाएँ,
मैं यहाँ से नाग छोड़ूँ,
वह वहाँ पर फनफनाएँ,
मालवा में क्रांति का भूचाल लाएँ।

मालवा में गीत मेरे गूँज जाएँ,
मैं यहाँ से तीर मारूँ,
वह वहाँ पर सनसनाएँ,
मालवा में रक्त की ज्वाला जलाएँ।

मालवा में गीत मेरे गूँज जाएँ,
मैं यहाँ पर बीज बोऊँ,
वह वहाँ पर जन्म पाएँ,
मालवा की गोद में फल-फूल लाएँ।

कविता जो न सार्थक हो

कविता
जो न सार्थक हो-
न सटीक हो-
न बोधक हो-
न बेधक हो
मैं नहीं लिखता
ऐसी कविता
जो न
आदमी के पहिचान की हो
न सत्यालोकित संज्ञान की हो।

किताब में लिखे तुम

किताब में लिखे तुम,
बड़े अच्छे लगते हो कविवर!

किताब से बाहर, पेट में पलस्टर लगाए,
अस्पताल में दाखिल
बीमार दिखते हो तुम, कविवर!

अस्पताल से बाहर,
अस्तित्व को पाने के लिए,
सम्प्रेषण कर पाने के लिए,
जी-जान से कुलकते बड़े जीवंत
दिखते हो तुम कविवर!

मेरी कलम चोंच से लिखती

मेरी कलम
चोंच से लिखती
चहचह करते शिल्पित शब्द।

पंक्तिबद्ध हो जो उड़ते हैं,
लीला लोल ललित करते हैं,
मुक्त गगन में
अथालौकित पंख पसार,
बनकर
जीवन की जयमाल!

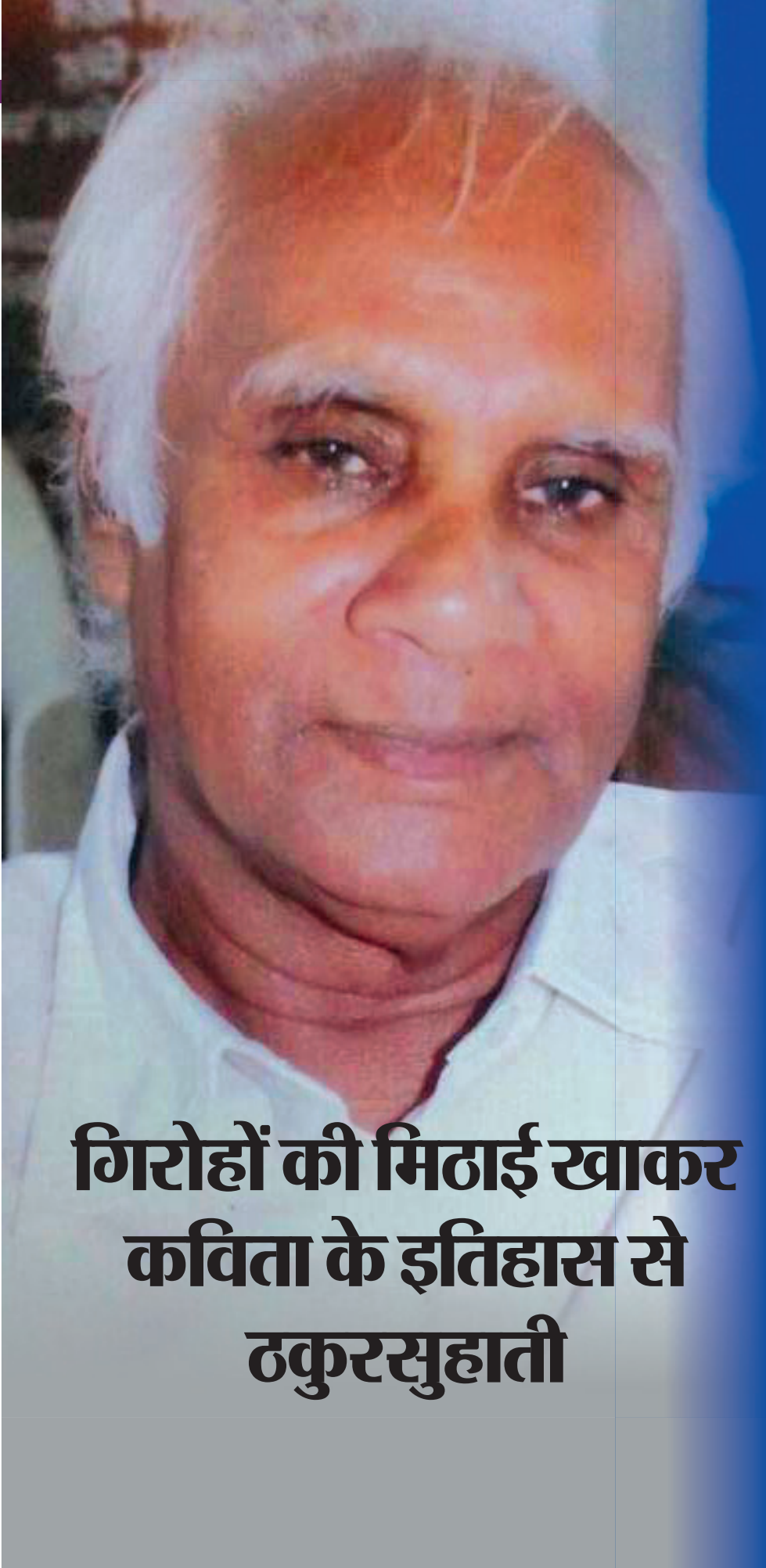

गिरोहों की मिठाई खाकर कविता के इतिहास से ठकुरसुहाती

जब साहित्य के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में किसी एक किताब से गुजरते हुए कविता के बड़े काल-खंड के किसी सुनियोजित षडयंत्र पर कोई गंभीरतम प्रतिरोध, आलोचकीय विडंबना पर्दे से बाहर खींचकर उसकी बेबाक चीर-फाड़ और सांगोपांग विश्लेषण सामने आता है, 704 पृष्ठीय 'समकालीन गीतकोश' के इकतालीस पन्नों पर दर्ज प्रतिष्ठित कवि नचिकेता का संपादकीय निष्कर्ष साझा करना अत्यावश्यक हो जाता है। वह साफ शब्दों में चेतावनी दे रहे हैं कि तुम कवि हो या आलोचक, गीत-नवगीत-जनगीत को लेकर हिंदी साहित्य के इतिहास के साथ कत्तई किसी किसम की ठकुरसुहाती मत करो, न आपसी भाईबंदी, निजी नफा-नुकसान अथवा सहलाऊ दोस्ताने में उसके सच से आंखें चुराओ! मंचों, अकादमियों, गिरोहों की मिठाई खाकर तालियां बजाने अथवा 'अपनों' के लिए कुछ भी लिख मारने से जन-विश्वास की खूंटी पर टिका इतिहास का आईना अंधा नहीं हो जाता है। किंचित भिन्न शब्दावलियों में नचिकेता की चेतावनी 'साहित्यिक तानाशाह' अज्ञेय ही नहीं, आज के शीर्षतम आलोचक नामवर सिंह, मैनेजर पांडेय सहित ठाकुर प्रसाद सिंह, 'नवगीत का प्रथम पुरस्कर्त्ता होने का दावा करने वाले' शंभुनाथ सिंह, केदारनाथ सिंह, 'दिग्भ्रमित' कमला प्रसाद, 'वैचारिक मोतियाबिंद से ग्रस्त, आत्म-विमुग्ध' कवि-संपादक ओम प्रकाश सिंह, राजेंद्र प्रसाद सिंह, राधेश्याम 'बंधु', 'इष्ट-मित्रों, चेले-चपाटियों को प्रसाद बाँटते' देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' और उनके कथित 'एकलव्यों', 'जड़ीभूत सौंदर्याभिरुचि के गद्य-कवि' राजेश जोशी, विश्वनाथ त्रिपाठी, रमेश रंजक, अरुण कमल, शिवशंकर मिश्र आदि के लिए भी है। इस बार प्रस्तुत है, 'कविकुंभ' के 'न्यून से किंचित-कम (!)' संपादन सहित अविकल-प्राय 'शब्द-स्वर'।

अभी-अभी कवि नचिकेता के संपादन में कुल 356 'नए-पुराने श्रेष्ठ और औसत' गीतकारों की रचनाओं सहित 704 पृष्ठों की एक किताब आई है 'समकालीन गीतकोश'। यहां कत्तई हमारा उद्देश्य इस पुस्तक की समीक्षा नहीं, बल्कि उसके संपादकीय में दर्ज नचिकेता के उस अभिमत से रू-ब-रू कराना है, जिसमें गीत-नवगीत, जन-गीत की विकास-यात्रा रेखांकित करते हुए वह पूछ रहे हैं कि यह एक विडंबना नहीं तो और क्या है? जिस भारतीय समाज ने अपने सैकड़ों, हजारों साल गीत के सहारे काटे हों, जिसका अधिकांश जीवन-व्यापार गीत के शब्दों, छंदों, संगीतात्मकता, रागात्मकता और उसकी लय के साथ संपादित होता रहा हो, जिसकी पीढ़ी-दर-पीढ़ी गीत गाते-गुनगुनाते, सुनते-सुनाते, पढ़ते-सुनते, उसमें उतरते-उतराते और उसे खुद में उतारते बड़ी होती रही हो, बीतती रही हो, आज उसी भारतीय साहित्य की मुख्य-धारा से, गंभीर साहित्य-विमर्श से गीत को क्यों जबरन या तो देश निकाला दे दिया गया है अथवा देशबदर कर देने की कोशिश की जा रही है? शत-प्रतिशत गीत से प्रतिबद्ध प्रगतिवादी कवि नचिकेता कहते हैं कि इतने जरूरी और जन-जीवन में नितांत घुले-मिले साहित्यिक रूप को अगर साहित्य की गंभीर चर्चा से दरकिनार कर दिया जाता है तो इसे एक विडंबना ही तो माना जाएगा! किंचित कड़वी-मुखर स्पष्टता के साथ 'गीत की पहचान, गीत का रचना-विधान, गीत और कविता का अंतस्संबंधं, ऐतिहासिक विकास-यात्रा, नवगीत की पदचाप, नवगीत का उदय, नवगीत की रचना-दृष्टि, नवगीत और जनगीत की रचना-दृष्टि का अंतर, नवगीत के विकास के विविध सोपान, समकालीन गीत का रचना-परिदृश्य, नवगीत की अप्रगतिशील आलोचना-दृष्टि' आदि उप-शीर्षकों से गुजरते एक-एक कर नचिकेता के ऐसे-ऐसे शब्द-संधानों से सामना होता है, जो गीत कविता के इतिहास पर ही नहीं, हमारे समय के महत्वपूर्ण कवि-साहित्यकारों, आलोचकों पर नए सिरे से सोचने, विचारने के लिए विवश करते हैं।

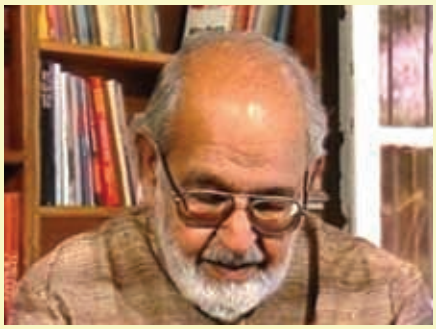

'साहित्यिक तानाशाह' अज्ञेय की प्रेत-बाधा : सबसे पहले गीत और कविता के अंतस्संबंधों के अंतर्गत सच्चिदानंद हीरानंद वात्सायन अज्ञेय की साहित्यिक चाल-कुचाल नचिकेता के शब्दों में इस तरह रेखांकित होती है - 'कविता-64' की अपनी पत्रात्मक प्रतिक्रिया में 'नई कविता और नवगीत, इस प्रकार के नामों से तो एक कृत्रिम विभाजन ही आगे बढ़ेगा और नई कविता की विभिन्न प्रवृत्तियों को समझने में बाधा ही अधिक होगी', जैसा सकारात्मक सोच रखनेवाले अज्ञेय ने ही घोषित कर दिया कि 'यों तो हिंदी में गीत अब भी लिखे जाते हैं और नई कविता के साथ नवगीत की भी एक धारा चलाई जा रही है- लेकिन गीत की धारा कभी हिंदी काव्य की मुख्य धारा नहीं हो सकती और न कभी हुई है, उस युग में भी नहीं, जब काव्य को गाकर प्रस्तुत करने का चलन था।' कविता के विस्तृत फलक से गीत/ नवगीत को जबरन धकियाकर काव्य-विमर्श के क्षेत्र से देशनिकाल दे देने का ही परिणाम है नवगीत का कविता से अलग स्वतंत्र अस्तित्व और अस्मिता की रक्षा का संघर्ष। यहीं पर ध्यान देनेवाली बात यह है कि अज्ञेय जिस चिंता से दुबले हो रहे थे, वैसी आकांक्षा नवगीकारों की कभी नहीं रही है। व्यापक जन-जीवन में गीत की गहरी पैठ और उसकी समयसापेक्ष, समाजसापेक्ष और युगसापेक्ष विकासशीलता से भयभीत अज्ञेय ने हड़बड़ी में यह फासीवादी फरमान जारी कर दिया कि 'गीतकारों के गीतों को कविता की धारा में रखने के लिए मुझे इसलिए कठिनाई होती है। यों तो कोई कवि गीत लिख सकता है- लेकिन काव्य में गीत का स्थान गौण ही है। यह भी हो सकता है कि कोई गीत-ही-गीत लिखे पर उस दशा में मैं उसे कवियों की पंक्ति में न रखकर संगीतकारों के वर्ग या अधिक-से-अधिक संधि-रेखा पर रखूंगा।' गोयाकि साहित्यिक तानाशाह अज्ञेय की इच्छा पर ही साहित्य का भाग्य निर्धारण होना है, अज्ञेय गीत को काव्य न मानेंगे तो वह काव्य नहीं रहेगा। अपने तानाशाह रवैये के जोश में वे यह भी भूल गए कि साहित्य का भाग्य नियंता कोई व्यक्ति नहीं हो सकता, उसका भाग्यनियंता व्यापक जनता और इतिहास होता है। अज्ञेय का यह व्यक्तिवादी प्रलाप सुनकर ही मुक्तिबोध को कहना पड़ा कि 'मनुष्य-जीवन का कोई अंग ऐसा नहीं, जो साहित्याभिव्यक्ति के लिए अनुपयुक्त हो। जड़ीभूत सौंदयार्नुभूति एक शैली को दूसरी विशेष शैली के विरुद्ध स्थापित करती है। गीत का नई कविता से विरोध नहीं है और न नई कविता को उसके विरुद्ध अपने को स्थापित करना चाहिए।' मुक्तिबोध की इस सकारात्मक चेतावनी से कोई सबक नहीं लेने की वजह से जड़ीभूत सौंदर्याभिरुचि की गिरफ्त में आकर आज भी गाहे-बेगाहे समकालीन कवि गीत की अस्मिता पर प्रश्नचिह्न लगाने का नामाकूल प्रयत्न करते रहते हैं। अज्ञेय का प्रेत जब-जब इन कवियों को अपने आगोश में ले लेता है, तब-तब वे कुछ नया शगूफा छोड़ देते हैं।

ठाकुर प्रसाद सिंह तो चार कदम और आगे : अरुण कमल के विचार से 'गीत लिखने की न्यूनतम अहर्त्ता कविता लिखना है। दुख की बात है कि खराब गद्यकार अच्छा कवि बन जाता है और खराब कवि अच्छा गीतकार। जबकि गीत लिख पाना साधना की चरम परिणति है। हर अच्छी कविता की इच्छा अंततः गीत बन जाना है।' ताज्जुब है कि कविता का जो रूप काव्य-रचना की साधना की अंतिम परिणति है और हर कविता की अंतिम इच्छा अंततः गीत ही बन जाने की है तो फिर उसे सर्वोत्तम काव्य-रूप का दर्जा देने में किसी को या उनको क्या आपत्ति है। अरुण कमल की उपरोक्त उक्ति में एक पेंच है। वे यह तो मानते हैं कि गीत लिखने की न्यूनतम अहर्त्ता कविता लिखना है परंतु

शातिराना ढंग से यह जोड़ना भूल जाते हैं कि गीत वही कविता बन सकती है, जो गेय हो और जिसकी अंतिम परिणति व्यापक जन-समूह के द्वारा गाया जाना है, आज का लय-छंद-तुक-विहीन अगेय गद्य हरगिज कविता नहीं है। गीत की समझ को विकृत, विरूपित और प्रदूषित करने में उन कवियों की विशिष्ट भूमिका रही है जिन्होंने बैठे-ठाले या शगल के रूप में कुछ गीत लिख लिए हैं- लेकिन वे मूलतः प्रचलित अर्थवाली 'कविता' से ही प्रतिबद्ध रहे हैं। ऐसे ही एक गीत-कवि शिवशंकर मिश्र हैं, जिनकी नजर में 'कभी होता था- लेकिन छंद अब कविता का पर्याय नहीं हो सकता, न ही गेयता गीत की शर्त बन सकती है।' ठाकुर प्रसाद सिंह तो शिवशंकर मिश्र से भी चार कदम आगे बढ़कर घोषित कर देते हैं कि 'गीत, कुल मिलाकर गेयता का प्रभाव मन पर छोड़ता है- लेकिन यह गेयता भी बाहरी न होकर भीतरी तत्त्व है और यह नितांत आधुनिक चित्रों या गद्य में भी पुराने रूप में रह सकता है।' यह भीतरी गेयता के अमूर्त्तन का जो आधुनिक चित्रों और गद्य में पहले से ही मौजूद है, आश्रय ग्रहण करने से गीत की गेयता का भी वही हश्र होगा, जो कविता में छांदसिक लय की जगह अर्थ की लय की खोज के कारण हुआ है। असल में, ये लोग गीत-रचना की अनुशासनबद्धता से परेशान रहे हैं- लेकिन देवेंद्र कुमार नई कविता के इन पैरोकारों और छद्म गीतकारों से अलहदा विचार रखते हैं), उनके विचार से 'अनुशासन से अलग गीत की संभावना हो ही नहीं सकती।' जाहिर है कि गीत-रचना में छंदानुशासन, गेयता और सांगीतिक लयान्विति का तिरस्कार उसे गीत के दायरे से घसीटकर छंदमुक्त कविता के परिसर में ढकेल देता, जो अंततः गीत के अस्तित्व और अस्मिता को ही निःशेष कर देगा। इसलिए शिवशंकर मिश्र और ठाकुर प्रसाद सिंह की रचनात्मक नीयत की पड़ताल की जानी चाहिए। इन दोनों तथाकथित गीतकार अपनी लगभग अगेय रचनाओं को, जो एक हद तक ही छांदस हैं, गीत साबित करना चाहते हैं। ठाकुर प्रसाद सिंह तो 'बंशी और मादल' में संगृहीत लोकगीत की लय, धुन और संवेदना पर आधारित कविताओं को उत्तम नवगीत साबित करने में लगभग कामयाब हो गए हैं। 'बंशी और मादल'की अधिकांश रचनाएं लोकगीताश्रित होते हुए भी गेय नहीं हैं। कुछ ही (तीस-पैंतीस) रचनाएं हैं जो गीत का दर्जा पाने के लायक हैं। आज के उत्तरआधुनिक दबाव से आक्रांत गोपेश्वर सिंह को भले ही 'गीत' कविता का झाड़न महसूस हों लेकिन थियोडोर अडोर्नो की निगाह में गीत मानव-सभ्यता की धूप-घड़ी हैं।

शंभुनाथ सिंह के मन में आसन जमाकर बैठा चोर : प्रयोगधर्मी गीतों के सिलसिले में शंभुनाथ सिंह के इस मनोगतवादी अभिकथन को कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं माना जा सकता कि उन्होंने वाराणसी की गंगा में बजरे पर हुई कवि-गोष्ठी में अपने गीत-पाठ के क्रम में 'नवगीत' शब्द का प्रयोग पहली बार किया था। इसका उनके अभिकथन के अलावा कोई दूसरा साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। किसी साहित्यिक विधा का उदय किसी व्यक्ति-विशेष के, वह व्यक्ति चाहे कितना ही प्रतिभासंपन्न और परिश्रमी क्यों न हो, एकल प्रयास का प्रतिफल नहीं होता, अपितु एक निश्चत काल-खंड में सामाजिक और ऐतिहासिक आवश्यकता का अनिवार्य परिणाम होता है। मतलब साफ है कि गीत-रचना के क्षेत्र में आ रहे गुणात्मक बदलाव को राजेंद्र प्रसाद सिंह या शंभुनाथ सिंह 'नवगीत' नाम से नहीं पहचानते तो दूसरा पहचानता क्योंकि गीत के रचना-परिदृश्य पर एक नई गीत-दृष्टि, रचना-दृष्टि और कला-दृष्टि के अवतरण के स्पष्ट प्रमाण मिलने लगे थे और इससे आँखें चुराई नहीं जा सकती थीं। नवगीत का प्रथम पुरस्कर्त्ता होने का दावा करने वाले शंभुनाथ सिंह का 'नवगीत-दशक-एक' की भूमिका में मानना है कि नवगीत 'प्रयोगवाद, प्रगतिवाद और नई कविता जैसा काव्य-आंदोलन न तो कभी था और न आज है। यह अवश्य है कि वह नई कविता के आंदोलन में भ्रमवश सम्मिलित था। किंतु यह भ्रम छठे दशक के अंत तक हट गया क्योंकि नई कविता का नेतृत्व करनेवाले कवि-आलोचक गीत-विधा को आधुनिकता की अभिव्यक्ति के लिए असमर्थ मानने लगे। नवगीत की रचना करने वाले कवि नई कविता के विरोधी नहीं थे और उनमें से तो कई नई कविता के भी सफल कवि थे- किंतु नई कविता के कवियों ने, जो स्वयं सफल गीतकार रह चुके थे, गीत-रचना को पिछड़ेपन की निशानी मानकर उससे अपने को पूर्णतः विच्छिन्न कर लिया। इस तरह नई कविता का आंदोलनात्मक रूप जितना उग्र होता गया, नवगीतकारों को साहित्य के क्षेत्र से उतना ही उपेक्षित किया जाने लगा।' यहाँ शंभुनाथ सिंह के मन में आसन जमाकर बैठा हुआ चोर उन्हें सच बोलने से रोक रहा है। वे यह मानने से साफ कतरा गए कि जो सफल गीतकार नई कविता के भी सफल कवि थे, उनमें शंभुनाथ सिंह का नाम भी शुमार किया जाता था और जब उन्हें नई कविता के सफल कवि-आलोचकों ने नई कविता का भी सफल कवि मानने से लगभग इंकार कर दिया, तब जाकर उनका मोहभंग हुआ और उन्होंने वर्ष 1980 के बाद नवगीत का प्रवक्ता गीतकार बनने की सोची तथा नवगीत दशकों के प्रकाशन की योजना बना ली। इसके पहले 'प्रयोगवाद और नई कविता' नामक अपनी आलोचना-पुस्तक में उन्होंने नवगीत के बारे में जो महान विचार प्रस्तुत किए हैं, उन पर जरा यहाँ गौर कर लिया जाए। उनके अनुसार 'नवगीत' एक सापेक्षिक शब्द है। नवगीत की नवीनता युग-सापेक्ष होती है। किसी भी युग में नवगीत की रचना हो सकती है। गीत रचना की परंपरागत पद्धति और विचारों के नवीन आयामों तथा नवीन भावसरिणियों की अभिव्यक्ति करनेवाले गीत जब भी और जिस युग में लिखे जाएंगे, नवगीत कहलाएंगे।' शंभुनाथ सिंह और उनके हिमायती नवगीत के केंद्र में अवस्थित आधुनिकतावाद पर लाख पर्दा डालने अथवा उसके भारतीय होने का दावा करें, मगर यह पाश्चात्य आधुनिकता का ही भारतीय संस्करण होगा। जिस समय गीत के केंद्र में शंभुनाथ सिंह आधुनिकतावाद को नवगीत का प्रमुख प्रतिमान घोषित कर रहे थे, उसके दशकों

पहले आधुनिकतावाद के प्रबल समर्थक स्टीफन स्पेंडर की दृष्टि में आधुनिकतावाद मर चुका होता है।

केदारनाथ सिंह भी उल्टे खयालात के निकले : हिंदी में गीत के लि, मोटे तौर पर गीत, गीति और प्रगीत जैसे तीन शब्दों का प्रयोग किया जाता है तथा तीनों को एक-दूसरे का पर्याय मान लिया जाता है- लेकिन ऐसा है नहीं। गीत की संरचना, अनुभूति, सामाजिक सरोकार और लोकप्रियता का परिसर गीति से अधिक चौड़ा और व्यापक होता है। दर्जन भर गीत लिखकर आधुनिक हिंदी गीत के श्रेष्ठ गीतकार मान लिए जाने वाले केदारनाथ सिंह की नजर में 'रचना-प्रक्रिया की दृष्टि से विचार किया जाय तो गीत के तंत्र में 'टेक' की स्थिति बहुत कुछ एक अधिनायक (तानाशाह) की-सी होती है और कविता के शुरू में अनायास आ जाने वाली वह पहली पंक्ति एक प्रकार से संपूर्ण रचना की नियति बन जाती है। होता यह है कि फिर सारी कवि-कल्पना उस एक पंक्ति के चारों ओर चक्कर काटने लग जाती है और कविता लाचार होकर उसका अनुधावन करने लगती है।' हालाँकि टेक के सांगीतिक महत्त्व के वे भी कायल हैं। आधुनिक गीत-रचना के सर्वमान्य तंत्र में सायास गीत लिखनेवाले कवियों की सारी कवि-कल्पना टेक के इर्द-गिर्द ही चक्कर काटने लग जाती है, भीतरी अर्ज के तहत और स्वतःस्फूर्त गीत रचने वाले कवियों के नहीं। गीत के गायन में हर बंद के बाद टेक की आवृत्ति अनिवार्य होती है, रचना में नहीं- लेकिन आधुनिक गीतकार अपनी अनुभूति या भाव की अभिव्यक्ति की एक ईकाई की पूर्णता को संकेतित करने के लिए टेक की आवृत्ति करते हैं। केदार जी तो यह भी मानते हैं कि टेक के अनुधावन या उसकी अनावश्यक आवृत्ति से गीत का सामूहिक प्रभाव कम हो जाता है। सचाई इसके विपरीत है। टेक की उपस्थिति से गीत का संगीतात्मक प्रभाव कम होने के बजाय बढ़ जाता है और अर्थ-निष्पत्ति में भी कोई बाधा नहीं पहुँचती। कुछ लोगों के द्वारा कविता की लय, छंद और तुकविहीन गद्यात्मक संरचना की तरह गीत-रचना में भी लय, छंद और तुक एवं गेयता के निषेध की वकालत की जा रही है। ऐसे लोग यह मोटी बात भी भूल जाते हैं कि गीत को हर हाल में गेय और संगीतात्मक होना है। इनके बिना गीत निरस्तित्व हो जाएगा। लय, छंद, तुक और संगीतात्मकता के निषेध से गीत अनुशासनविहीन और गद्यात्मक हो जाएगा तथा अनुशासनविहीन स्वतंत्रता अराजक और विघातक होती है। जीवन-परिस्थितियों और वस्तुगत स्थितियों के प्रत्यक्ष प्रस्तुतीकरण और भावों के विस्तारपूर्ण विश्लेषण के अभाव के कारण कभी-कभी लोग मानने की भूल कर बैठते हैं कि गीत सामाजिक जीवन की सभी जटिल अनुभूतियों को समग्रता में व्यक्त करने में नाकामयाब होता है, जो वस्तुपरक वास्तविकता नहीं है। गीत ही नहीं, साहित्य की किसी एक विधा या कला-रूप में यह क्षमता नहीं है कि वह समस्त मानव-जीवन की संपूर्ण जटिलता को संपूर्णता में अभिव्यक्ति दे सके। नवगीत में प्रयोगधर्मी नव्यता लाने के लिए कवियों ने (खासकर नवगीतकारों ने) गीत की लय और छंदों में विकृति की हद तक तोड़-फोड़ कर दी है, जिससे गीत का पूरा चेहरा ही क्षत-विक्षत और लहूलुहान दृष्टिगोचल होने लगा है। गीत का रचना-कर्म बेहद मुश्किल और पेंचीदा कला-कर्म है और जोखिमभरा भी। इन चुनौतियों की जटिलता को महसूस करके ही आज के अधिकांश गद्य-कवि गीत-रचना की ओर मुखातिब होने से परहेज करते हैं।

सुर-में-सुर मिला रहे नामवर सिंह, मैनेजर पांडेय : गीत को गंभीर साहित्य के दायरे से बाहर रखने में जितनी निर्ममता प्रयोगवाद और नई कविता दौर के कवियों और उनके पक्षधर आलोचकों ने बरती है, उतनी तटस्थता और कठोरता मार्क्सवादी आलोचकों ने भी बरती है। गीत को एक सामाजिक क्रिया मानने वाले रामविलास शर्मा अपनी त्रिखंडीय आलोचना-पुस्तक 'निराला की साहित्य-साधना' में निराला की गीत-कला, गीतों की रचनात्मक विशिष्टता, सामाजिक सरोकार, प्रभाव-संगठक उद्देश्य आदि विषयों पर कुछ कहने से साफ कन्नी काट गए। 'गीत व्यापक जन-मानस को बदलने में क्रांतिकारी भूमिका अदा करते हैं' जैसे विचार रखने वाले नामवर सिंह भी अस्तित्ववादी-आधुनिकतावादी निरे बौद्धिक कवियों के सुर में सुर मिलाकर आजकल कहने लगे हैं कि गीत अब संभव नहीं रह गया है। इसी प्रकार गीत के बिना हिंदी साहित्य के इतिहास को अधूरा मानने वाले मैनेजर पांडेय ने भी यह घोषित कर दिया कि गीत लिखना बहुत मुश्किल काम है, लेकिन प्रश्न यह है कि आज कल लिखे जाने वाले सभी गीत क्या खराब गीत की श्रेणी की रचनाएं हैं। शिवकुमार मिश्र के सिवाय अन्य आलोचक तो गीत-साहित्य को पढ़ने तक में अपनी हेठी समझते हैं। ऐसी ही खतरनाक स्थितियों से आज का गीत गुजर रहा है, फिर भी हमारे आत्मविमुग्ध समकालीन गीतकार अपनी जुबान खोलना नहीं चाहते। विचारणीय यह है कि इन परिस्थितियों में गीत-साहित्य की गंभीर और संवेदनशील आलोचना कैसे संभव होगी और यह काम करने के लिए कौन आगे आएगा? ऊपर से तुर्रा यह कि हमारे आत्मतुष्ट नवगीतकार इस मिथ्या मुगालते में हैं कि नवगीत आज के साहित्य-विमर्श के केंद्र में है या आ गया

है। पाठ्य पुस्तकों और कविता-केंद्रित आलोचना से तो गीत गायब है ही, नवगीतकारों के अलावा कोई भी नवगीत को गंभीर और उम्दा कविता तक नहीं मानता। यह बेहद अफसोसनाक तथ्य है कि समकालीन गीत का अधिकांश हिस्सा आज भी मंच से जुड़ा हुआ है जिसमें सस्ती भावुकता को उभारने वाली और श्रोताओं की संवेदना को हौले-हौले सहलाने वाली बिंबधर्मिता, गले की मिठास, कोमलकांत शब्दावलियों की प्रमुख भूमिका होती है और गीतकार-बंधु अक्सर मंच से मिलनेवाली सस्ती वाहवाही और समानधर्मा रचनाकारों की ठकुरसुहाती एवं मंच से हासिल होने वाले मोटे पारिश्रमिक को ही अपनी उपलब्धि मानकर आत्मसंतुष्ट हो जाते हैं, जबकि गीत की श्रेष्ठता कलाबाजी और गलेबाजी से इतर व्यापक जीवनानुभव की अभिव्यक्ति में समग्रता और गहराई में निहित होती है।

जड़ीभूत सौंदर्याभिरुचि के राजेश जोशी गीत लिख ही नहीं सकते : जड़ीभूत सौंदर्याभिरुचि वाले दूसरे गद्य कवि राजेश जोशी की निगाह में 'गीत का अब पुनर्नवा होना संभव नहीं है।' आशय है कि गीत के अलावा साहित्य की अन्य तमाम विधाओं, खासकर समकालीन कविता, जिसमें राजेश जोशी लिखते हैं, का तो पुनर्नवा होना मुमकिन है, केवल गीत का पुनर्नवा होना अब संभव नहीं है- क्योंकि राजेश जोशी गीत लिख ही नहीं सकते। गरजकि समकालीन कविता और समकालीन कहानी तो मौजूदा सामाजिक यथार्थ की उपज हैं और गीत कोई आसमान से टपकी हुई वस्तु है। साहित्यिक विधाओं में किया गया उनका यह सांप्रदायिक भेद-भाव केवल गीत को ही नुकसान नहीं पहुँचाएगा वरन साहित्य की समझ को ही विकृत और प्रदूषित कर देगा। राजेश जोशी को यह तो मालूम ही होगा और होना चाहिए कि कोई भी सामाजिक संरचना बिल्कुल जड़ नहीं होती। वह लगातार विकसित और परिवर्तित होती रहती है। जो लोग इस्लामिक आतंकवादियों की तरह केवल फतवा देकर किसी साहित्यिक विधा के पूरे भविष्य पर प्रश्नचिह्न भर नहीं लगाया करते, अपितु साहित्य की संजीदा अंतर्यात्रा करने में विश्वास रखते हैं। वे जानते हैं कि 'नवगीत और जनगीतों में समकालीन समस्याओं से साक्षात्कार की चिंता है। इनमें सामाजिक संवेदनशीलता के विभिन्न पक्षों की अभिव्यक्ति और जनजीवन के भीतर व्यक्तिमन के अंतर्द्वंद्वों की पहचान की कोशिश भी है। इसलिए उनमें एक सहृदय कवि की सहज बौद्धिकता की चमक भी है, जो पाठकों और श्रोताओं को प्रभावित करती है।' (मैनेजर पांडेय), और नामवर सिंह मानते हैं कि 'समकालीन कविता का मूल्यांकन गीत को शामिल किए बिना अधूरा ही माना जाएगा। गीत भी कविता की एक विधा है- किंतु गीत, कविता का पर्याय नहीं है। गीत और कविता के अंतर को समझने में अक्सर लोग भूल करते हैं। गीत कविता के अंतर्गत एक विधा है तो कविता व्यापक फलक वाली चीज है। यदि गीत को ही कविता माना जाएगा तो वह कविता को सीमित करना होगा।'

अरुण कमल की जिज्ञासा आत्महीनता का नतीजा तो नहीं : गीत और कविता के बीच कोई शत्रुता नहीं है और न ही होनी चाहिए बल्कि गीत और कविता एक-दूसरे के पूरक हैं। दोनों में परस्पर अंतरावलंबन है। दोनों में लगातार आवाजाही होती रहती है। मौजूदा दौर में गीत और कविता के मध्य

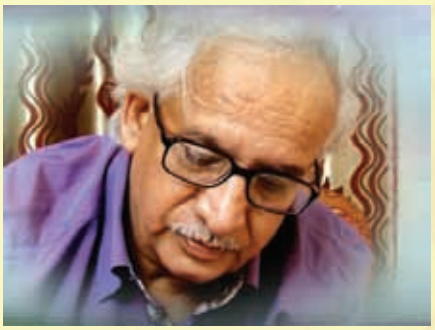

जो एक दीवार खड़ी कर दी गई है, इस पर ठाकुर प्रसाद सिंह ने गहरा क्षोभ व्यक्त करते हुए कहा है कि 'सारी गड़बड़ी इस कारण होती है कि गीत को कविता के व्यापक क्षेत्र से अलग कोई स्वतःस्फूर्त्त, स्वतंत्र साहित्यिक विधा मान लिया जाता है। वस्तुतः ऐसी बात नहीं है। गीत की आलोचनात्मक कसौटी कविता मात्र की आलोचनात्मक कसौटी से अलग नहीं होती। अतः वे लोग जो गीत को नई कविता से भिन्न कोई नई वस्तु मानते हैं, वे कविता की विस्तृति को संकुचित दृष्टि से देखते हैं।' घुटनाटेक विसर्जनवाद का यह एक अच्छा नमूना है। सचमुच में, अगर गीत और कविता की आलोचनात्मक कसौटी में कोई फर्क नहीं होगा या होना चाहिए तो इस वितंडावाद को खड़ा करने के लिए जिम्मेदारी सबसे पहले मुक्तिबोध के सिर बांधनी चाहिए, जिनकी दृष्टि में 'काव्य की रचना-प्रक्रिया के अंतर्गत तत्त्व-बुद्धि भावना, कल्पना आदि एक होते हुए भी प्रभावसंगठक उद्देश्यों की भिन्नता के साथ ही रचना-प्रक्रिया भी वस्तुतः बदल जाती है।' यह बात जरूर चिंताजनक है कि आजकल, खासकर प्रगतिवाद के बाद, प्रयोगवाद और नई कविता-युग से गंभीर काव्य-विमर्श की दुनिया से गीत को विस्थापित कर दिया गया है। इस चिंता से आक्रांत होकर ही अरुण कमल ने जिज्ञासा प्रकट की है कि आज कविता दो श्रेणियों में बँट गई है। कविता अलग, गीत अलग। ऐसा क्यों हुआ, कब हुआ। हालाँकि यह कोई अबूझ पहेली या सात पर्दे में छिपा गोपन रहस्य नहीं है। अगर अरुण कमल आधुनिक हिंदी साहित्य की विकास-यात्रा के इतिहास पर सरसरी निगाह भी डालने की जहमत उठाते तो बहुत ही आसानी से वास्तविकता पता

चल जाती। इसी का नतीजा है कि अरुण कमल को लगता है कि खराब कवि गीतकार बन जाता है अर्थात् गीत लिखने वाला व्यक्ति खराब कवि होता है। ताज्जुब है कि हर महान कविता की अंतिम इच्छा एक खराब रचना (गीत) बन जाने की क्यों होती है? कहीं यह आज की गद्य कविता के व्यापक जन-जीवन से विस्थापन से उत्पन्न आत्महीनता का नतीजा तो नहीं है?

कमला प्रसाद जैसे दिग्भ्रमित लोग : समकालीन गीतों में आज के मनुष्यों के जीवन की तमाम सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जटिलताओं की उसकी समग्रता में सफल अभिव्यक्ति हो रही है, जरूरत है पूर्वग्रहमुक्त होकर इसे देखने और समझने की। कमला प्रसाद जैसे दिग्भ्रमित लोग अगर समकालीन गीत की उपलब्धियों को उससे अंतरंग परिचय पाए बिना ही नकार देते हैं तो अधिक चिंताजनक स्थिति नहीं होती, अधिक चिंताजनक स्थिति तो तब खड़ी हो जाती है, जब गीत के पक्ष में खड़े आलोचक और गीतकार भी, गीत की सकारात्मक उपलब्धियों को पहचानने से किनाराकशी कर लेते हैं। साठोत्तरी कविता में धूमिल ने मोचीराम के जीवन-संघर्ष और उसकी त्रासद विडंबनाओं का पदार्फाश करनेवाली कविता 'मोचीराम' लिखी तो उन्हें उनके समकालीन कवियों और आलोचकों ने हाथोहाथ उठा लिया। उसी मोचीराम के जीवन-संघर्ष और जीवन की विडंबनाओं को बेहद संवेदनशील ढंग से उद्घाटित करनेवाला गीत जब कृष्ण कल्पित 'मोची का गीत' लिखते हैं, तो यह गीत, गीत के पक्ष में खड़े आलोचकों और गीतकारों की निगाह से भी ओझल हो जाता है। 'नवगीत में ही वह क्षमता है, जो जन-जन का संवेदन बन सके। यह वह संवेदन है, जिसकी सही राजनीतिक दिशा हो तथा कलात्मक योग्यता के कारण वह संप्रेषणीय भी हो ताकि जनता उन गीतों को सुनकर सक्रिय हो उठे और जनता की इस सक्रियता और गतिविधियों में तीव्रता लाने के लिए चलाए जा रहे अभियान के प्रति रचनाकार की प्रतिबद्धता भी जरूरी है।' कमला प्रसाद के इस अभिकथन में जनगीत की पहचान और रचना-दृष्टिवाले गीतों को ही 'नवगीत' मान लेने का भ्रम समाहित है। नवगीत तो कभी राजनीतिक प्रतिबद्धता और जन-संघर्ष की सक्रियता का अलंबरदार रहा ही नहीं है, बल्कि नवगीतकारों की दृष्टि में कथ्य-संप्रेषण में विचारधारा की नहीं, अपितु कला-तत्त्वों की रक्षा पर विशेष बल होता है- 'आर्थिक स्तर पर कमरतोड़ महँगाई, बेटियों/ बहनों के विवाह के समय वर पक्ष द्वारा माँगा जानेवाला भारी-भरकम दहेज, पारिवारिक विघटन, भीड़, अकेलापन, सामाजिक भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, दलाली, नैतिक मूल्यों का क्षरण आदि ऐसी समस्याएं हैं, जो एक नवगीतकार और जन गीतकार को समान रूप से आहत करती हैं। जब इन समस्याओं पर कोई नवगीतकार लिखेगा तो बिंबों का सहारा लेगा और जब जनगीतकार लिखेगा तो सीधी-सपाट लट्ठमार शैली अपनाएगा। नवगीतकार हर मूल्य पर रचना में कला-तत्त्वों की रक्षा करना चाहेगा तो जनगीतकार अपने कथ्य- संप्रेषण के लिए कला-तत्त्वों की बलि देने में संकोच नहीं करना चाहेगा।' (देवेंद्र शर्मा 'इंद्र')। कमला प्रसाद की पारखी और प्रतिबद्ध नजरों के सामने से देवेंद्र शर्मा 'इंद्र' का यह क्रांतिकारी बयान गुजरा होता तो उनकी आँखें अवश्य खुल गई होतीं।

निराला से ज्यादा समय-सापेक्ष केदारनाथ अग्रवाल का सपना सच साबित नहीं हुआ

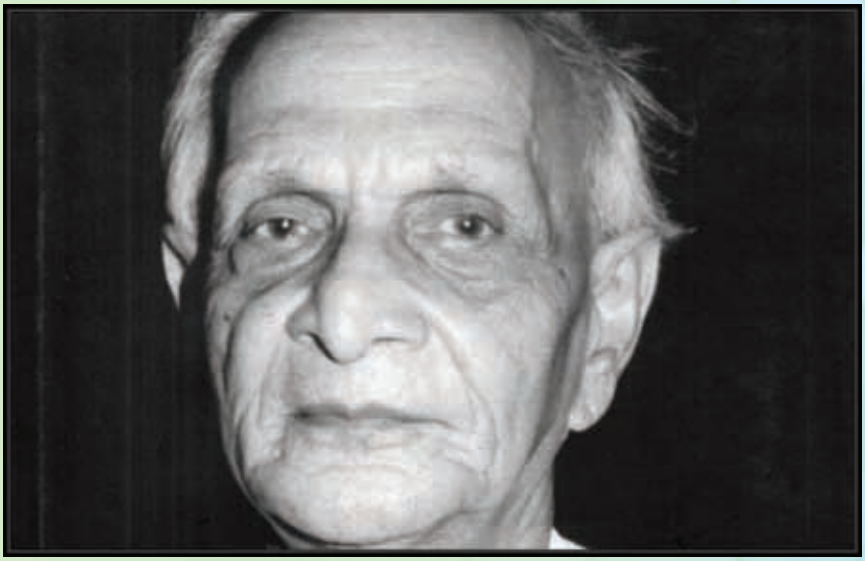

प्रगतिशील दौर के अन्य लगभग सभी कवियों ने गीत लिखे, और उनके गीत जन-आंदोलनों में लोकप्रिय भी हुए हैं। शिवमंगल सिंह सुमन, नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर बहादुर सिंह, मलखान सिंह सिसौदिया, बंशीधर शुक्ल, मान सिंह राही, खेम सिंह नागर, रामकेर, बिसराम, बलवीर सिंह रंग, निरंकारदेव सेवक, मुकुट बिहारी सरोज, महेंद्र भटनागर आदि ने अपनी सकारात्मक पहलकदमी से गीत के अमूल्य भंडार को भरा है। इन गीतकारों में केदारनाथ अग्रवाल के गीत अपनी सघन राजनीतिक चेतना और मजदूर-किसान वर्ग की संघर्षधर्मिता में अकूत आस्था और क्रांतिधर्मी वैचारिकता के कारण अलग से पहचाने जाते हैं। उन्हें विश्वास था कि आजादी के बाद 'इस

दुनिया में/ इसी जनम में/ हमको तुमको मान मिलेगा/ गीतों की खेती करने को/ पूरा हिंदुस्तान मिलेगा'- लेकिन केदारनाथ अग्रवाल का यह सपना सच साबित नहीं हुआ। दुख के साथ कहना पड़ता है कि प्रगतिशील दौर के इन सकारात्मक, क्रांतिकारी और समाजसापेक्ष गीतों की गंभीरता से सुध भाववादी, आधुनिकतावादी और अस्तित्ववादी आलोचकों ने तो नहीं ही ली, प्रगतिशील आलोचकों (चाहे रामविलास शर्मा हों, शिवदान सिंह चौहान हों या नामवर सिंह हों) ने भी नहीं ली। इस लिहाज से हिंदी गीत का इतिहास मैनेजर पांडेय का ऋणी रहेगा, जिन्होंने 'जन आंदोलन और जनवादी गीत' में शंकर शैलेंद्र के बहाने इस दौर के गीतों की शक्ति और प्रेरणादायक भूमिका को रेखांकित करने की पहल की है।

गीत की रूप-रचना और भाषा-संवेदना के धरातल पर केदारनाथ अग्रवाल के गीत निराला से भी अधिक समय-सापेक्ष और प्रगतिशील तथा शंभूनाथ सिंह, भवानी प्रसाद मिश्र और ठाकुर प्रसाद सिंह के लोकधर्मी गीतों से अधिक आधुनिक और प्रयोगधर्मी गीत थे। इसलिए निराला के परवर्ती गीतों एवं 'बंशी और मादल' के लोकधर्मी गीतों के बजाय केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में नवगीत का उत्स ढूँढा जाना अधिक प्रासंगिक होगा। शायद केदारनाथ अग्रवाल की संघर्षधर्मी प्रगतिशीलता को नवगीत की पतनशील आधुनिकतावादी चेतना और मध्यमवर्गीय जीवन दृष्टि पचा नहीं पाई। अब समय आ गया है कि इतिहास की इन भूलों को सुधार लिया जाए क्योंकि कुछ अति उत्साही लोग नवगीत में भी जनबोध की खोज कुछ निहित स्वार्थ के तहत करने लगे हैं और नवगीत को जनगीत से अधिक प्रगतिशील और जनपक्षर सिद्ध करने की खातिर एड़ी-चोटी का पसीना एक कर रहे हैं।

लोकगीत का आश्रय लेकर रचे गीतों में अक्सर लोकगीत की लय, छंद, धुनों का या कहें कि लोकगीत के शरीर का अपहरण अधिक हुआ और लोक-जीवन के जीवन-संघर्ष और मुक्ति-संघर्ष के चित्रण से नजरें चुरा ली गईं। यह सब कुछ आंचलिकता के नाम पर हुआ, जिसकी आलोचना करते हुए विद्यानिवास मिश्र ने लिखा कि 'आंचलिक भाषाओं में गीत के नाम पर जो रचना-जाल फैल रहा है, वह तो और भयावह है। उसमें तो सारा शब्द-विन्यास, भाव-विन्यास और बिंब-विन्यास उधार लिया हुआ है कबाड़ खाने से) और आंचलिक भाषा क्रिया देती है या पेड़-पौधों पशु-पक्षियों के नाम देती है। लगता है हरिणी के पाँवों में चक्की बाँध दी गई हो।' विद्यानिवास मिश्र की यह तल्ख टिप्पणी उन गीतकारों के लिए थी, जो लोकभाषा के शब्द, मुहावरे और लय-छंदों का प्रयोग उसके सामाजिक जीवन और सांस्कृतिक परिवेश से काटकर अपने गीतों में केवल टटकापन लाने के उद्देश्य से कर रहे थे। आज के गीतकारों को भी आंचलिक शब्द, मुहावरे और लोकगीत की लय, छंद और धुनों के प्रयोग में सावधानी बरतने की दरकार है अन्यथा गीत लोक-रुचि को बिगाड़ देने के लिए जिम्मेदार हो जाएंगे।

जिस प्रकार हर काम के लिए कांग्रेस को गांधीजी के नाम की और भारतीय जनता पार्टी को भारतीय संस्कृति की जरूरत होती है, उसी प्रकार आधुनिक कविता के प्रादुर्भाव की आहट लोग अनायास ही निराला की कविताओं के माध्यम से सुनने लगते हैं जबकि गीत के रचना-परिदृश्य पर आने वाले गुणात्मक बदलाव की आहट केदारनाथ अग्रवाल के 'युग की गंगा' में संगृहीत गीतों में स्पष्ट सुनाई दे रही थी, केवल प्रगतिवादी कवि कहकर उन्हें खारिज कर देना इतिहासविरोधी दृष्टि है। हालाँकि इन काल-विभाजनों के विश्लेषण में अत्यधिक चूकें हैं, जिसकी छान-बीन होनी चाहिए। ओम प्रकाश सिंह के अनुसार सन 1976 से 1990 तक नवगीत का संघर्ष काल रहा है- क्योंकि इस काल के आते-आते हमारे देश में सामाजिक एवं राजनीतिक उथल-पुथल के उपरांत स्थिरता आ चुकी थी। गोया कि जब किसी देश के सामाजिक और राजनीतिक वातावरण में स्थिरता होती है, तभी साहित्य में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है, संघर्ष या हलचल की स्थिति में नहीं- अर्थात साहित्य सामाजिक और राजनीतिक गतिविधियों से निरपेक्ष होता है। यह बात कोई स्वस्थ मस्तिष्क का व्यक्ति नहीं बोल या लिख सकता है। उस संघर्षशील वातावरण में ही नवगीत अपनी अस्मिता और अस्तित्व की स्थापना की लड़ाई लड़ रहा था। या तो ओमप्रकाश सिंह को वैचारिक मोतियाबिंद के कारण वस्तुगत यथार्थ दृष्टगोचर ही नहीं होता या वे हिंदी के बहुसंख्यक पाठकों और गीतकारों को निहायत अनपढ़ और बेवकूफ समझते हैं। इस दौर के नवगीतों के ऐतिहासिक विकास की पड़ताल करते हुए ओम प्रकाश सिंह इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'हम डॉ. (?) राजेन्द्र प्रसाद सिंह द्वारा संपादित 'गीतांगिनी' (सन 1958) की भूमिका से नवगीत के नामाकरण को स्वीकार कर लें तो इसी क्रम में वीरेन्द्र मिश्र की कृति 'लेखनी वेला' (सन 1958) और रामनरेश पाठक की 'क्वार की साँझ' (सन 1958) की कुछ रचनाओं को नवगीत की ओर उन्मुख एक कदम मान सकते हैं।' जहाँ तक मेरी जानकारी है, 'क्वार की साँझ' रामनरेश पाठक का एक गीत है, जो उनके गीत-संग्रह 'एक गीत लिखने का मन' में शामिल है। इस नाम से उनका कोई संग्रह प्रकाशित नहीं है। इस गीत का एक भोंडा अनुकरण आलोचक नन्द किशोर नवल ने जरूर किया है और उनकी टेक की पंक्ति 'महुए के पीछे से झाँका है चाँद/ पिया आ' को हूबहू उन्होंने अपने गीत में स्वरचित बनाकर प्रस्तुत कर दिया है। अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए ओम प्रकाश सिंह विस्तार से नवगीत के विकास को रेखांकित करने के लिए कुछ नवगीत-संकलनों एवं संग्रहों की चर्चा करते हैं, जिनमें उन्होंने तमाम महत्त्वपूर्ण नवगीत-संचयनों का जिक्र तक नहीं किया है। क्या ओमप्रकाश सिंह की जान-बूझकर की गई यह हरकत नवगीत के इतिहास को विकृत या प्रदूषित करने की चेष्टा का प्रमाण नहीं है? ओम प्रकाश सिंह का खयाल है कि सन 2006 से आज तक नवगीत का नवोत्कर्ष काल है- लेकिन इस काल-खंड को नवगीत का नवोत्कर्ष काल क्यों माना जाए, इस सवाल का कोई मुनासिब उत्तर उनके पास नहीं है। मेरे विचार से नवगीत अथवा समकालीन गीत का नवोत्कर्ष काल सन 1990 के बाद से आज तक के काल को माना जाना ज्यादा समीचीन और तथ्यपरक है। इस दौरान नवगीत-रचना के क्षेत्र में एक नितांत नई पीढ़ी का आगमन हुआ है और ये लोग काव्य-गोष्ठियों, पत्र-पत्रिकाओं से लेकर इंटरनेट, वाट्सेप, ट्विटर, फेस बुक, वेबसाइट आदि के उपयोग से नवगीत को अत्यधिक लोकप्रिय बनाने का महत्त्वपूर्ण काम भी कर रहे हैं।

रमेश रंजक के गीत में खूबसूरत औरत!

वर्ष 1960 के बाद अब तक नवगीत की गंगा में बहुत पानी बह चुका है- लेकिन सारा पानी या गंगा में प्रवाहित होने वाले सभी पदार्थ मंदिर में चढ़ाने लायक नहीं हैं, साफ जल के साथ ढेरों कूड़े-कचरे भी बहते रहते हैं और ये कूड़े-कचरे सड़कर गंगा के जल को प्रदूषित करते रहते हैं। इसलिए हमें नवगीत में मौजूद अंतर्विरोधों को नजरअंदाज नहीं करना चाहिए। वाकई रमेश रंजक हिंदी जनगीत के शिखर गीतकारों में से एक हैं। वर्ष 1970 के बाद हिंदी नवगीत के यथास्थितिवादी रवैये, गहन निराशाबोध, मध्यमवर्गीय ढुलमुलपन और पतनशील जीवन-दृष्टि के खिलाफ जब व्यापक जन-साधारण की असहमति, असंतोष, आक्रोश और प्रतिरोध की आवाज बुलंद की गई थी तो इस दिशा में रमेश रंजक ने अग्रणी भूमिका निभाई थी तथा जनगीत का नवगीत से अलग सौंदर्यशास्त्र भी गढ़ा था। शंभु गुप्त की निगाह में 'कवि या कहानीकार को ज्यादा सचेत या चौकस नहीं होना चाहिए। थोड़ी-सी लापरवाही, थोड़ी-सी विस्मृति, थोड़ी-सी अबोधता या एक फिल्म का नाम लेकर कहूँ तो 'थोड़ी-सी बेवफाई' उसमें होनी चाहिए। यह ठीक है। यह हो सकती है; लेकिन इसके साथ-साथ यह भी जरूरी है कि उसमें थोड़ी-सी सामाजिकता, थोड़ी-सी प्रतिबद्धता, थोड़ी-सी बेचैनी और थोड़ी-सी ईमानदारी भी हो।' मेरे विचार से हर रचनाकार में समाज और विचार के प्रति थोड़ी-सी प्रतिबद्धता, ईमानदारी और बेचैनी नहीं, प्रत्युत पूरी प्रतिबद्धता, ईमानदारी और बेचैनी होनी चाहिए। अधजल गगरी छलकत जाए। आधी-अधूरी प्रतिबद्धता, ईमानदारी और बेचैनी कितनी खतरनाक होती है, रचना को वह कहाँ-से-कहाँ पहुँचा देती है, इसे समझने के लिए रमेश रंजक जैसे समर्थ जनगीतकार के 'इतिहास दुबारा लिखो' के एक गीत की कुछ पंक्तियों के साथ वैचारिक मुठभेड़ कर सकते हैं। गीत की पंक्तियां इस प्रकार हैं- 'पास नहीं है बैल, बदरा पानी दे/ जालिम है ट्युवैल, बदरा पानी दे/....इतने ठन-गन दिखा न भाई/ खूबसूरत औरत की नाईं/ तू भी हुआ रखैल, बदरा पानी दे।' इस गीत की इस पूरी पंक्ति 'खूबसूरत औरत की नाई तू भी हुआ रखैल' पर ध्यान केन्द्रित करें तो साफ पता चलेगा कि रमेश रंजक की नजर में दुनिया भर की सारी खूबसूरत औरतें घरेलू और निष्ठावान पत्नी नहीं, स्वार्थी, लालची और अविश्वसनीय रखैलें होती हैं। यह विचार जनवादी तो क्या पूँजीवादी भी नहीं है- यह तो घोर सामंतवादी और पुरुष-वर्चस्ववादी दृष्टिकोण है। हालाँकि रमेश रंजक की यह रचनात्मक नीयत नहीं थी। अपनी रचना के प्रति लापरवाह और गैरजिम्मेदार होने से इस प्रकार के वैचारिक अंतर्विरोध का, रचनाकार की इच्छा के विरुद्ध उत्पन्न हो जाना अस्वाभाविक नहीं है।

नवगीत और जनगीत की रचना-दृष्टियों की भिन्नता को समझने का छोटा-सा प्रयास शायद अप्रासंगिक नहीं होगा। आठवें दशक के मध्य में रमेश रंजक ने नवगीतकार माहेश्वर तिवारी के एक नवगीत की 'धूप में जब भी जले हैं पाँव/ घर की याद आई/ नीम की छोटी/ छरहरी छाँव में/ डूबा हुआ मन/ द्वार का आधा झुका/ बरगदः पिता/ माँः बँधा आँगन/ सफर में/ जब भी दुखे हैं पाँव/ घर की याद आई' की टेक की पहली अर्द्धाली 'धूप में जब भी जले हैं पाँव' का सहारा लेकर एक गीत लिखा- 'धूप में जब भी जले हैं पाँव, सीना तन गया है/ और आदमकद हमारा जिस्म लोहा बन गया है/ तन गई है रीढ़/ जो मजबूर थी श्रम से/ हाथ बागी हो गए/ चालाक मरहम से/ अब न बहकाओ, छलावा छलनियों में छन गया है/ हम पसीने से नहाकर हो गए ताजे/ तोड़ने को बघनखों के बंद दरवाजे/ आदमी की आबरू की ओर से सम्मन गया है।' इस गीत की बनावट और बुनावट, पाठ और आस्वाद तथा रचना-प्रक्रिया और रचना-दृष्टि के फर्क को उद्घाटित करने के क्रम में कुमारेंद्र पारसनाथ सिंह का निष्कर्ष है कि रचना-क्रम की गुत्थी को पकड़ने की विश्लेषणात्मक पहल के लिए 'किसी टीका-टिप्पणी की आवश्यकता नहीं है। सहज पाठ और रसास्वाद की कोशिश से- कोशिश चाहें तो अर्थ-संधान की भी की जा सकती है- रचनाओं की तासीर और रचना-दृष्टि के अंतर को समझा जा सकता है। एक यदि अपनी सघन रागात्मकता और कुछ बहुत ही मार्मिक अथार्नुषंगों की कलात्मक संभावनापूर्ण सृष्टि से आपको अपने बहुत करीब महसूस होने लगती है तो दूसरी उसी जमीन से उठकर भी हठात एक आक्रामक तेवर ग्रहण कर लेने के कारण अपने आंतरिक आवेश और ताप से आपको अलग किए रहती है।' माहेश्वर तिवारी और रमेश रंजक के इन गीतों की प्रभविष्णुता के सवाल पर प्रगतिशील और जनवादी बुद्धिजीवियों में भी मतैक्य नहीं है। नवगीत और जनगीत के मूलभूत अंतर को अगर सूत्र रूप में रेखांकित करना चाहें तो कह सकते हैं कि 'नवगीत का कवि अपनी व्यक्तिगत अनुभूति और तन्मयता को अधिक महत्त्वपूर्ण मानता है। सामाजिक वास्तविकताएं भी उसके निजी संदर्भ में अर्थ पाती हैं। जनगीत का कवि अपनी निजता को सामाजिक जीवन और आंदोलनों से जोड़ने में ही सार्थकता अनुभव करता है। इसलिए जनगीत में व्यक्तिगत अनुभूतियां सामूहिक अनुभव का अंग बनकर चरितार्थ होती है।' (अजय तिवारी)। जाहिर है कि नवगीत यथास्थितिवाद की कविता है और जनगीत प्रतिरोध और संघर्ष की। 'कविता संघर्ष होती है, कविता प्रतिरोध होती है। जहाँ प्रतिरोध या संघर्ष नहीं है, वहाँ केवल कला है, कविता नहीं है।' (विजेंद्र नारायण सिंह)

गीत-विरोधी बुद्धिजीवियों की चापलूसी

भारतीय इतिहास में बीसवीं शताब्दी का सातवाँ दशक बहुत ही उथल-पुथल भरा और वैचारिक अराजकता का दौर रहा है। इस दौरान साहित्य में, खासकर कविता के क्षेत्र में किसिम-किसिम के वादों और कविता के नामकरण के चलन का दौर था। गीत भला इस हड़बोंग से निरपेक्ष और अछूता कैसे रह सकता था। फलस्वरूप गीत के क्षेत्र में भी नए नामों की बाढ़-सी आ गई। रंगनाथ मिश्र 'सत्य' ने 'अगीत' का नारा लगाया तो राजीव सक्सेना ने 'एंटीगीत' का, विद्यानिवास मिश्र को इसे 'नई कविता के गीत' कहना अधिक उचित लगा तो उदयभानु मिश्र को इसे 'नया गीत', मोहन अवस्थी को 'अनुगीत' और रवींद्र भ्रमर को 'सहज गीत' कहने में अधिक दम नजर आया। श्रीकृष्ण तिवारी ने नवगीत के विरुद्ध अपनी आवाज बुलंद करते हुए 'खिड़की से झाँकते अगीत' नाम का अगीतों का एक समवेत संकलन भी प्रकाशित किया। विविध नामों के इस घने धुंधलके को चीरकर अन्ततः

'नवगीत' ही स्वातंत्र्योत्तर हिंदी गीत की विकास-यात्रा को रेखांकित करने वाला प्रत्यय बन सका, क्योंकि 'नवगीत' केवल कुछ व्यक्तियों की बौद्धिक खुजलाहट को शांत करने वाला व्यक्तिवादी शगल भर नहीं था बल्कि नवगीत के साथ एक नई रचना-दृष्टि और विश्वदृष्टि का गीत-रचना की दुनिया में प्रवेश का सकारात्मक नतीजा था। 'नवगीत के नए प्रतिमान' के समकालीन हिंदी गीत (नवगीत और जनगीत दोनों) की विकास-यात्रा में श्रमजीवी और लघु पत्रिकाओं के महत्त्वपूर्ण योगदान को नजरों से ओझल कर देने वाले या उनसे नावाकिफ और आत्म-विमुग्ध संपादक राधेश्याम 'बंधु' का खयाल है कि 'कुछ पत्रिकाओं ने भी नवगीत विशेषांक प्रकाशित किए हैं। पत्रिका 'अपरिहार्य' ने नवगीत विशेषांक के दो खंड मधुकर अष्ठाना के संपादन में प्रकाशित किए हैं- किंतु वैचारिक अस्पष्टता और शैल्पिक असंगतियों के कारण ये विशेषांक ज्यादा चर्चित नहीं हो सके। इसी तरह 'उत्तरायण' लघु पत्रिका ने 'शब्दपदी' शीर्षक से निर्मल शुक्ल के संपादन में नवगीत विशेषांक प्रकाशित किया- किंतु उसकी भी अधिकांश रचनाएं नवगीत के प्रतिमानों की कसौटी पर खरी नहीं उतरतीं।' 'नवगीत के नए प्रतिमान' के संपादक राधेश्याम बंधु का यह तालीबानी दृष्टिकोण गंभीरता से पुनर्विचार की आवश्यकता के लिए आमंत्रित करता है। सवाल है कि नवगीत के सही प्रतिमान क्या हैं, कहीं नवगीत 'जनगीतों' की उपलब्धियों को भी आत्मसात कर लेने का षडयंत्र तो नहीं कर रहा है, क्या नवगीत एक विकासशील और प्रगतिशील गीत-विधा न होकर नितांत जड़, दकियानूस, प्रतिगामी और रूढ़िबद्धता का शिकार तो नहीं हो गया है, क्या छठे दशक से लेकर आज तक भारतीय समाज की सामाजिक चेतना और साठोत्तरी नवगीत की रचना-दृष्ट में कोई विकासोन्मुख तब्दीली नहीं आई है? छठे दशक के अंत में उद्भूत 'नवगीत' में अंतनिर्हित 'नव' विशेषण का इक्कीसवीं सदी की गीत-रचना पर चस्पाँ करने का औचित्य क्या है? राधेश्याम 'बंधु' से एक दूसरा सवाल यह पूछा जा सकता है कि आपने कहाँ देख-पढ़ लिया कि निर्मल शुक्ल द्वारा संपादित 'शब्दपदी' 'उत्तरायण' का नवगीत विशेषांक है। राधेश्याम 'बंधु' की इस बात से सहमति जताई जा सकती है कि 'अपरिहार्य' में वैचारिक अस्पष्टता और शैल्पिक असंगति है तथा 'शब्दपदी' में संकलित अधिकांश रचनाएं नवगीत के प्रतिमानों की कसौटी पर पूरी तरह खरी नहीं उतरतीं- क्योंकि नवगीत की पहचान, परख और मूल्यांकन के निकषों के निर्धारण का सर्वाधिकार तो राधेश्याम 'बंधु' ने पेटेंट करवा रखा है। साथ ही- मधुकर अष्ठाना और निर्मल शुक्ल ने देवेंद्र शर्मा 'इंद्र', रामकुमार कृषक, राजेंद्र गौतम, नचिकेता, श्रीराम परिहार, प्रेमशंकर रघुवंशी, रामदरस मिश्र, वेदप्रकाश अमिताभ जैसे गीत-चिंतकों के विचारों की विश्वनाथ त्रिपाठी, जिन्होंने आज तक नवगीत का कोई भी संग्रह नहीं पढ़ा है, नामवर सिंह, अजय तिवारी, गंगा प्रसाद विमल, कृष्णदत्त पालीवाल जैसे दिल्लीवासी मनीषियों के आप्त वचनों के बरक्स अवहेलना की गई है, साथ ही इन्होंने गीत-विरोधी बुद्धिजीवियों की चापलूसी करने का महत्त्वपूर्ण कार्य भी किया है। मधुकर अष्ठाना और निर्मल शुक्ल ने अपनी पत्रिका और समवेत संकलनों में प्रकाशित रचनाओं के साथ अमानवीय शारीरिक सलूक करके उन्हें प्रदूषित, विकृत और विरूपित करने का असंगत प्रयत्न भी किया है और न ही किसी संपादित कृति को मौलिक कृति की भाँति प्रस्तुत करने की गैरकानूनी हरकत ही की है। इन लोगों ने नवगीत को कुछ मनगढ़ंत, अवैज्ञानिक, दकियानूस संकीर्णताओं और रूढ़ियों में कैद करने की कोशिश भी नहीं की है- लेकिन नवगीत के प्रतिमानीकरण का प्रश्न तो अब तक अनुत्तरित है। सारे ताम-झाम फैलाने और तरह-तरह के नामाकूल समझौते और प्रयत्न करने के बावजूद राधेश्याम 'बंधु' इस जरूरी काम में असफल ही रहे हैं। नवगीत के समयसापेक्ष कला-प्रतिमान क्या हैं, इस बिंदु पर हिंदी की आलोचना तो चुप है ही, गीतकारों की ओर से भी कोई सार्थक और वैज्ञानिक पहल अब तक नहीं नहीं की जा सकी है।

नवगीत का आलोचना-परिसर निचाट मैदान की तरह खाली है। गीत-संग्रहों की भूमिका और अन्यत्र नवगीतकारों द्वारा लिखी गई आलोचनाओं में अपने गिरोह के कुछेक रचनाकारों का विरुदावली-गान और मनोगतवादी गौरव-बखान ही अधिक है, नवगीत की सीमा, संभावना, व्यक्तिगत उपलब्धियों और अंतर्विरोधों की सही पड़ताल नहीं। अगर किसी लेखक ने गलती से इस दिशा में दो-चार डग भरे तो लोगों द्वारा उसे अपना दुश्मन, अहंकारी और गीत-विरोधी होने के तमगों से विभूषित कर दिया जाता है।

किसी रचनाकार को गजल के शिल्प और रूपाकार में कोई महाकाव्य लिखने की अभिलाषा होगी तो उसके सामने रचनात्मक चुनौतियां भी उतनी जोखिमभरी और कठिन होंगी। संभव है कि कोई अति प्रतिभासंपन्न रचनाकार यह काम सफलतापूर्वक संपन्न कर भी ले तो वह रामचरितमानस या कामायनी जैसा प्रभाव उत्पन्न करने में सक्षम हो जाएगा- ऐसा मानना भी एक यूटोपिया ही होगा। हमारे नवगीतकार आजकल ऐसा ही खतरा उठाने की मंशा जाहिर कर रहे हैं।

देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' वस्तुतः अपने इष्ट मित्रों व चेले-चपाटियों को आजकल प्रसाद बाँटने में कोई कोताही नहीं बरत रहे हैं। देवेन्द्र जी नया शिगूफा छोड़ते हैं- 'आज बिला शक यह बात कही जा सकती है कि अवधविहारी श्रीवास्तव नवगीत के प्रेमचंद हैं।' प्रसाद-वितरण में माहिर इस दानवीर (आलोचक) की दृष्टि में 'यदि प्रेमचंद आदर्शोन्मुख, थार्थवादी कथाकार थे तो संजय शुक्ल यथार्थोन्मुख आदर्शवादी गीतकार हैं।' सिर्फ फतवा उछाल देने और किसी रचनाकार को प्रेमचंद, निराला या रवीन्द्रनाथ ठाकुर कह देने मात्र से वह उनके जैसा नहीं हो जाता, इस प्रकार की उपाधि बाँटने के पहले उसकी वस्तुगत समीक्षा करके बताना होगा कि इनकी स्थापना का वस्तुगत सत्य क्या है। गोयाकि प्रेमचंद 'फ्री-साइज' का एक ऐसा सिला-सिलाया सूट हैं, जिसे जनपक्षधर हो या जनविरोधी, क्रांतिकारी हो या प्रतिक्रियावादी, गरीब हो या अमीर- हर तरह के व्यक्ति को मनमाने ढंग से पहना दिया जाय। मैं नहीं जानता कि 'बस्ती के भीतर' के रचनाकार अवध विहारी श्रीवास्तव में इंद्र जी की महत्वाकांक्षा की पूर्ति की सामर्थ्य है कि नहीं, उन्होंने इस चुनौती को कबूल किया है या नहीं, किंतु 'मैं शिखर पर हूं' का दावा ठोकने वाले नवगीतकार को तो यह चुनौती कबूल करने में कोई दिक्कत नहीं होनी चाहिए और ऐसा करके एक उदाहरण प्रस्तुत करना ही चाहिए। मुझे लगता है कि गीतों के जरिए 'रंगभूमि' और 'गोदान' जैसी क्लासिक कृतियों की पुनर्रचना तो दूर की कौड़ी है ही, 'टायलेट' फिल्म की कहानी लिखना भी मुमकिन नहीं है। कोई प्रयास करके तो देखे। इंद्रजी को मलाल है कि तथ्यों को सिर के बल खड़ा करके जिस प्रकार उनके गिरोह के लोग नवगीत का सारा श्रेय उनके माथे ही मढ़ना चाहते हैं, वैसे ही जनवाद या जनगीत का भी पूरा श्रेय उनको ही क्यों नहीं मिलना चाहिए, उनको नहीं तो कम से कम उनके एकलव्य (अवध विहारी श्रीवास्तव) को अवश्य मिलना चाहिए। मना किसने किया है। अगर उनमें इतनी कूबत है तो इतिहास न्याय जरूर करेगा, विश्वास रखें।

उर्दू ज़बान है क्या, इसमें अधिकतर शब्द तो हिंदी के : आलम खुर्शीद

पटना (बिहार) के जाने-माने शायर आलम खुर्शीद दशकों से स्तरीय साहित्यिक पत्रिकाओं, दूरदर्शन, आकाशवाणी एवं निजी चैनलों से प्रसारित हो रहे हैं। साथ ही, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, साहित्य अकादमी, उर्दू अकादमी एवं गालिब अकादमी दिल्ली के कार्यक्रमों के अलावा अंतर्राष्ट्रीय कवि-सम्मेलन/मुशायरों के मंचों पर भी उनकी लगातार भागीदारी बनी हुई है। उनकी प्रमुख प्रकाशित कृतियाँ हैं- नए मौसम की तलाश, जहरे गुल, ख्यलाबाद, एक दरिया ख़्वाब में, कारे जियाँ आदि। 'कविकुंभ' से शब्द-संवाद में वह कहते हैं - आज की गजल जिंदगी की तमाम समस्याओं, असमानताओं और उपलब्धियों को उसकी कुरूपता और सुन्दरता के साथ अपने आंचल में समेट रही है। आज गजल को उर्दू और हिंदी के नाम पर अलग-अलग दायरों में बाँटने मानसिकता न तो रचनाकार के हित में है और न गजल के हित में। उर्दू जबान है क्या ! इसमें अधिकतर मूल शब्द हिंदी ही के तो हैं।

प्रश्न : इस दौर की हिन्दी गजल के आप प्रमुख हस्ताक्षर हैं। आपके नजरिए से गजल की प्रवृत्ति कैसी होनी चाहिए? आज की गजल के बारे में क्या कहेंगे?

आलम खुर्शीद : इसमें कोई शक नहीं कि आज की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा गजल है, रचनाकारों के बीच भी और पाठकों के बीच भी। यह विधा अब महबूबा की जुल्फ और कमर या मयखानों से निकल कर अपना दायरा विस्तृत कर चुकी है। आज की गजल सिर्फ सपनों में कैद नहीं है बल्कि यह जिंदगी की तमाम समस्याओं, असमानताओं और उपलब्धियों को उसकी कुरूपता और सुन्दरता के साथ अपने आंचल में समेट रही है। जीवन की वास्तविकता और सामाजिक सरोकारों से ये अपना रिश्ता मजबूत कर रही है। मेरी समझ से इसकी भाषा आम बोल चाल की भाषा के करीब और सहज होनी चाहिए। इसी भाषा में रचनाकार अपने अशआर में जितनी अधिक गहराई पैदा कर सकें, यह रचनाकार और गजल दोनों की सफलता होगी। मैं जानता हूँ कि कठिन और क्लिष्ट शब्दों की जगह सरल भाषा में लिखना एक मुश्किल काम है। कहीं-कहीं एक-दो कठिन शब्द इस्तेमाल करने की मजबूरी भी पैदा हो सकती है। उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। मूलतः गजल की भाषा यही होनी चाहिए। और स्वाभाविक रूप से यही हो भी रहा है क्योंकि आम तौर पर अब न फारसी शब्दों को समझने वाले पाठक बचे हैं, न संस्कृत के।

आज गजल को उर्दू और हिंदी के नाम पर अलग अलग दायरों में बाँटने मानसिकता न तो रचनाकार के हित में है और न गजल के हित में। गजल की लोकप्रियता का कारण यह है कि यह बेहद सुंदरता से मात्र

दो पंक्तियों में इतने बड़े-बड़े विषय समेट लेती है कि उसकी व्याख्या करने में सैकड़ों पन्ने खर्च करने पड़ेंगे। इसका अपना एक अलग मिजाज है। यहाँ कठोर से कठोर बात भी नर्म लहजे में कही जाती है, जिसके बैक ग्राउंड से मधुर संगीत उभरने का एहसास होता है। वास्तव में आसान सी नजर आने वाली यह विधा बेहद मुश्किल विधा है। जाहिर है कि इसके कुछ विधान हैं और उन विधान का पालन किये बगैर अच्छी गजल नहीं कही जा सकती है, चाहे वह किसी लिपि में लिखी जाए। अगर गजल में हिंदी के कुछ क्लिष्ट शब्द इस्तेमाल कर देने से ही गजल ₹हिंदी गजल₹ हो जाएगी या उर्दू में अरबी फारसी के क्लिष्ट शब्दों का इस्तेमाल इसे ₹उर्दू गजल₹ कहा जाएगा तो यह हास्यास्पद है। हिंदी के नाम पर अगर कोई इस विधा के छंद शास्त्र से कुछ आजादी हासिल करना चाहे तो वह अपने पांव पर कुल्हाड़ी मारने जैसा कार्य होगा। उर्दू जबान है क्या ! इसमें अधिकतर मूल शब्द हिंदी ही के तो हैं। हाँ! अपने आप को समृद्ध करने के लिए इसने दूसरी जबानों के शब्द और व्याकरण से फायदा उठाया है। यह गजल कहने वाले पर निर्भर करता है कि उन शब्दों को अपनी गजल में इस्तेमाल करे या न करे। मेरी समझ से गजल तो सिर्फ गजल है, चाहे जिस लिपि में लिखी जाए और मुझे यह भी उम्मीद है कि आने वाले दिनों में गजल का रूप देख कर यह अंदाजा लगाना भी मुश्किल हो जाएगा कि कोई गजल मूलतः हिंदी में लिखी गई है या उर्दू में बल्कि आज भी बहुत सारी ऐसी गजलें कही जा रही हैं जिनके ऊपर उर्दू या हिंदी गजल का ठप्पा नहीं लगाया जा सकता।

प्रश्न : आज की हिन्दी गजल, उर्दू गजल के समकक्ष आ खड़ी है, क्या कहेंगे आप?

आलम खुर्शीद : मेरी समझ से इस तरह के तुलनात्मक प्रश्न या अध्ययन ₹गजल₹ के उत्थान के लिए श्रेयस्कर नहीं। यह तुलना इसलिए भी न्यायोचित नहीं कि हिंदी की तुलना में उर्दू जबान में गजल कहने की परंपरा बहुत पुरानी हैं। वहां बाजाब्ता गजल के स्कूल कायम रहे हैं, जैसे दिल्ली स्कूल, लखनऊ स्कूल। वहां उस्तादों की परंपरा भी रही है, जहाँ उनके शागिर्द वर्षों तक गजल कहने की विद्या सीखते रहे हैं। उस्ताद उनके कलाम की इस्लाह करते रहे हैं, गजल की भाषा की बारीकियों से अवगत कराते रहे हैं, गजल के बह्र ओ औजान की तालीम देते रहे हैं। जब यह तालीम पूरी हो जाती थी और शागिर्द पारंगत हो जाता था तो उसे अपना कलाम कहीं सुनाने की इजाजत मिलती थी। फिर यह परंपरा बाद की पीढ़ी में स्थांतरित हो जाती थी। अच्छा उस्ताद भी हर आनेवाले को अपना शागिर्द नहीं बनाता था। वह आवेदक की सलाहियत की कठिन परीक्षा लेता था। उसे उसी समय कोई मिसरा दिया जाता था और उस पर शेर कहने को कहा जाता था। एक कठिन शर्त यह भी थी कि शागिर्द को एक हजार से दस हजार तक पुराने अशआर कंठस्थ होने चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है कि दूसरा पक्ष इस तरह की तालीम या माहौल से वंचित रहा। अब तो खैर उर्दू में भी यह सब माहौल नहीं रहा लेकिन उसका कुछ असर वहां अब भी जरूर है। यही कारण है कि इन सब कमियों के बावजूद आज का गजल कहने वाला सिर्फ अपनी प्रतिभा के बल पर इधर-उधर कुछ सीनियर गजलकारों से थोड़ी बहुत मदद ले कर गजल कह रहा है (और कुछ लोग वाकई बहुत अच्छा कह रहे हैं) तो उनकी सराहना की जानी चाहिए। उन्हें प्रोत्साहित करना चाहिए।

प्रश्न : हिन्दुस्तानी गजल को किस मुकाम पर पाते हैं आप? इस क्षेत्र में युवाओं से क्या आशा है और इस धारा के युवा गजलकारों से कितना संतुष्ट हैं?

आलम खुर्शीद : आज की गजल के बारे में बहुत सारी बातें पहले ही हो चुकीं। फिर भी मैं यह कहना चाहूँगा कि मैं आज कही जाने वाली गजलों से खुश हूँ और आशान्वित इसलिए भी हूँ कि नई पीढ़ी के रचनाकार अनावश्यक विवादों में उलझे बगैर बेहद गंभीरता से गजल से अपना सम्बन्ध जोड़ रहे हैं और बहुत अच्छी गजलें सामने आ रही हैं। मैं कई ऐसे नौजवान गजलकारों को जानता हूँ जो उर्दू नहीं जानते मगर बहुत अच्छी गजलें कह रहे हैं। उनकी गजलें किसी लिहाज से कमतर नहीं। कुछ ऐसे नए लोगों से भी मेरा संपर्क है जिन्होंने गजल कहने के शौक में उर्दू सीखने की ललक पैदा की और निश्चित रूप से उर्दू सीखने के बाद उनका शब्द भंडार बढ़ा है, उनकी भाषा में निखार पैदा हुआ है और वह पहले से बेहतर ढंग से सुंदर गजलें कह रहे हैं।

प्रश्न : पाठ्यक्रमों में होने से क्या गजल पर समीक्षा और आलोचना के द्वार खुले हैं, कितना जरूरी समझते हैं आप गजलों का पाठ्यक्रमों में सम्मिलित होना?

आलम खुर्शीद : गजलों का पाठ्यक्रम में शामिल होना स्वागतयोग्य कदम है। इससे गजल की विधा को प्रोत्साहन मिलेगा। पाठ्यक्रम में गजल का इतिहास पढ़ाया जाएगा, क्लासिक्स पढ़ाये जायेंगे, छंदशास्त्र सिखाया जाएगा और आलोचना पढ़ाई जाएगी। निश्चित रूप से इससे माहौल बनेगा और सीखने सिखाने की का वातावरण तैयार होगा। शर्त यह है कि विद्यालय या विश्व विद्यालय में पाठ्यक्रम के लिए रचना के चुनाव में गंभीरता और सावधानी बरती जाए। इस सम्बन्ध में बिहार के एक विश्विद्यालय के विभागाध्यक्ष ने एक साल पहले गंभीरता से पहल भी की थी। मुझे पता नहीं, बात कहाँ तक आगे बढ़ी।

प्रश्न : गजल के अलावा भी आपने कई और विधाओं में लेखन किया है। गजल के बाद किस विधा को अपने सबसे करीब पाते हैं?

आलम खुर्शीद : यूँ तो मैं समीक्षाएं, आलोचनाएँ और आलेख भी कभी-कभी लिखता रहा हूँ। उर्दू और हिंदी की बहुत सारी कहानियों और कविताओं को दोनों भाषाओ में अनुवाद/लिप्यांतर कर के पत्रिकाओं में प्रकाशित करवाता रहा हूँ लेकिन मूलतः मुझे शायरी से अन्तरंग लगाव है और शायरी में भी गजल मुझे सबसे जियादा प्रिय लगती है। जब मुझे शायरी में कोई बात जरा विस्तार से अधिक जोर देकर कहनी या लिखनी होती है और मात्र एक शेर में उस विषय के बयान से मुझे संतोष नहीं होता तो मैं कविता या नज्म का सहारा लेता हूँ लेकिन उसके लिए मैं उर्दू में प्रचलित आजाद नज्म का सहारा लेता हूँ लेकिन यह कविता गद्य -कविता

नहीं होती। यह भी छंद युक्त या बह्र में होती है। अलबत्ता इसकी पंक्तियाँ लयबद्ध नहीं होतीं और पंक्तियाँ मात्रा में भी बराबर नहीं होतीं। वैसे मैंने बहुत सारी गजलें ऐसी भी कही हैं, जिनका हर शेर अर्थ के हिसाब से गजल के मिजाज के मुताबिक स्वतंत्र अर्थ देता है लेकिन गजल के तमाम अशआर एक दूसरे से जुड़े होते हैं और सब मिलकर कविता का रूप धारण कर लेते हैं। उर्दू में इसे गजले-मुसलसल कहते हैं।

प्रश्न : आपकी भविष्य की साहित्यिक योजनाओं के बारे में जानना चाहेंगे।

आलम खुर्शीद : मेरी गजलों के पांच संकलन 'नए मौसम की तलाश', 'जहरे-गुल', 'ख्यालाबाद', कारे-जियाँ और 'न ये बस्ती हमारी,न वो सहरा हमारा' उर्दू में प्रकाशित हो चुके हैं। हिंदी में एक ही संकलन बहुत पहले डायमंड प्रकाशन, दिल्ली से ₹एक दरिया ख़्वाब में₹ में प्रकाशित हुआ था। अब एक और संकलन हिंदी में प्रकाशित कराना चाहता हूँ। उसकी पाण्डुलिपि तैयार है। फिर हिंदी और उर्दू दोनों में अपनी सौ चुनी हुई गजलों का संकलन प्रकाशित कराने की योजना है। एक मित्र मेरी शायरी के हवाले से लिखे गये नामचीन आलोचकों के प्रकाशित आलेख पर एक पुस्तक प्रकाशन के लिए जिद कर रहे हैं। उन आलेखों को इकठ्ठा कर रहा हूँ। उसके बाद गजलों का नया संकलन तैयार करने की इच्छा है। पता नहीं, इनमें से कौन- कौन से काम अपने अंजाम तक पहुंचेंगे।

गज़ल के उत्थान में एक सबसे बड़ी बाधा- कवि सम्मेलन और मुशायरे

गजल कहने वालों को उर्दू हिंदी के अनावश्यक विवादों और संकीर्णता से बचना होगा, तभी हिंदी और उर्दू के मेल से गजल की भाषा समृद्ध होगी। गजल कहने वालों को गजल के व्याकरण, उसके मूल मिजाज और छंद शास्त्र से मित्रता करनी होगी। इस मामले में कोई रियायत प्राप्त करने की कोशिश घातक होगी। सबसे पहले तो इसी मानसिकता से छुटकारा पाना होगा कि बोल चाल के आम प्रचलित शब्दों की जगह अस्वाभाविक ढंग से जान बूझकर हिंदी के क्लिष्ट शब्दों के समावेश से या देवनागरी लिपि में लिख देने या या किसी हिंदी पत्रिका में उसके प्रकाशन से गजल अपने मूल स्वभाव से अलग हो कर 'हिंदी गजल' नाम की कोई विशेष गजल हो जाएगी।

यह भी जानना आवश्यक होगा कि गजल में क्या-क्या कहा जा चुका है और किस तरह कहा जा चुका है। यह जाने बगैर कुछ नया कहना मुश्किल है या जियादा बेहतर या अनोखे ढंग से कुछ कहना मुश्किल है। कहने का तात्पर्य यह है कि हमें गजल का इतिहास जानना होगा। पहले कही गई गजलों का अध्ययन गंभीरता से करना होगा। इसके अभाव में गजलकार किसी विषय पर शेर कह कर उसे मौलिक समझेंगे मगर वास्तविकता यह होगी कि उसी विषय पर कोई शायर पहले ही बेहतर ढंग से शेर कह चुका होगा। नया गजलकार पहले से कहे गए बेहतर शेर की मात्र भौंडी नकल करेगा और इस भ्रम का शिकार भी रहेगा कि उसने मौलिक शेर कहा है। उर्दू के क्लासिक साहित्य और बेहतरीन गजलगो शायरों के बहुत सारे संकलन लिप्यांतर होकर अब हिंदी में उपलब्ध हैं, जो लोग उर्दू नहीं जानते उन्हें इन किताबों को पढ़ना चाहिए।

गजल के उत्थान में एक सबसे बड़ी बाधा या खतरा आये दिन होने वाले कवि सम्मेलन और मुशायरे हैं, जहाँ अधिकतर घटिया शायरी का साम्राज्य है। जहाँ अपनी निम्न स्तरीय माल बेचने के लिए नाटकीय मुद्रा में उछल कूद और नाच गा कर श्रोता की भावनाओं का शोषण किया जाता है। स्टेज पर नजर आने वाले/वाली कई शायर/शायरात ऐसे हैं, जो खुद से एक मिसरा भी नहीं लिख सकते मगर देश-विदेश के भोले-भाले श्रोता इन्हें ही बड़ा रचनाकार समझते हैं। दरअसल मुशायरे/कवि सम्मेलन का स्टेज मार्केटिंग के इस दौर में एक बड़ी इंडस्ट्री बन गया है जहाँ मार्केटिंग के हथकंडों से घटिया माल बेच कर खूब कमाई हो रही है।

नई पीढ़ी के रचनाकार स्टेज की भव्यता और बाजारवाद से आकर्षित हो कर मुशायरों और कवि सम्मेलन में सुनाई जाने वाली शायरी को ही स्तरीय शायरी या कामयाब शायरी समझ कर उसका अनुसरण कर रहे हैं। इसका परिणाम यह है कि अच्छी सलाहियत रखने वाले रचनाकार भी भ्रम का शिकार हो कर अपनी क्षमता का सही इस्तेमाल नहीं कर पा रहे हैं। हमें इस खतरे से बचना होगा और वास्तविकता समझनी होगी।

कभी मेरी आलोचना से अर्थ का अनर्थ हो जाता था - आलम खुर्शीद

मेरे परिवार में दूर दूर तक भी किसी का सम्बन्ध साहित्य से न था, न आस पास कोई साहित्यिक माहौल था। मेरी शिक्षा हिंदी मीडियम से आरा(भोजपुर)में हुई। स्कूल में मैं भाषा के रूप में हिंदी और संस्कृत पढता था और कालेज में वाणिज्य का विद्यार्थी था। उर्दू पढ़ना भर जानता था।

बचपन से मेरी रूचि खेल कूद में थी और कालेज के जमाने तक नियमित रूप से जिला स्तर पर फुटबाल और क्रिकेट के लीग मैच खेला करता था। हाँ! स्कूल के जमाने ही से फिल्मी गीतों की उलटी सीधी तुकबंदी कर के पैरोडी बनाया करता था। जिसे मेरे कुछ साथी हँसी मजाक में गाया करते थे।

कालेज के जमाने में मेरे संपर्क में कुछ साहित्यकार मित्र शामिल हुए जिनकी रचनाएँ उर्दू की श्रेष्ठ पत्रिकाओं में प्रकाशित होती थीं। उन दिनों शाम के बाद हम रोज मिला करते थे । रचनाकार मित्र अपनी कहानियां कवितायें गजलें सुनाया करते थे। बाद में रचनाओं पर खूब समीक्षाएं होतीं। लेकिन उन महफिलों में मैं उन सभी रचनाकारों के बीच अकेला श्रोता हुआ करता था। मेरी हैसियत एक ऐसे श्रोता की थी जो रचनाओं की ऐसी आलोचनाएँ किया करता

था कि अर्थ अनर्थ में बदल जाता था। साहित्य से मेरी अज्ञानता एक विशुद्ध श्रोता के रूप में रचना के सम्बन्ध में ऐसे ऐसे मूल सवाल खड़े करती कि रचनाकार बगलें झांकने लगता था। मित्रों के बीच खूब ठहाके लगते।

एक दिन शायद मैं ने एक मित्र की शायद कुछ अधिक आलोचना कर दी। उसे दुःख पहुंचा और दुखी हो कर उस ने गुस्से में कहा कि किसी की रचना की आलोचना करना बहुत आसान काम है कभी कुछ लिख कर दिखाओ तब जानें। उसे दुखी देख कर मैं चुप हो गया। घर लौट कर मुझे आत्मग्लानि होने लगी कि मुझे ऐसा कुछ नहीं करना चाहिए। और मैं ने उसी क्षण फैसला किया किआइन्दा ऐसा नहीं करूंगा। लेकिन मित्र की यह बात भी कहीं अंदर तक चुभ गई कि ₹कभी कुछ लिख कर दिखाओ तो जानें!₹ यहीं से शुरू हुई मेरी लेखन साधना ..... उन दिनों एक अजीब सा दंभ मेरे अंदर कहीं था कि जो काम कोई और कर सकता है वह मैं क्यूँ नहीं कर सकता। मैं किस्से, कहानियों, उपन्यासों का तो बचपन के दिनों ही से दीवाना था मगर उसके बाद मैं ने विशेष रूप से मशहूर साहित्यिक पत्रिकाएं,उपन्यास और शायरी पढनी शुरू कर दी। गजल की विधा मुझे अधिक रुचिकर लगी सो पुराने नए सभी शायरों के संकलन पढ़ डाले। साथ ही साथ कुछ कुछ अशआर भी कहने लगा जो मेरी डायरी तक सीमित रहे। वह अशआर किसी लायक हैं भी या नहीं यह भी मुझे पता नहीं था सो कभी किसी को सुनाने या दिखाने का साहस नहीं हुआ। धीरे धीरे मेरी डायरी के बहुत सारे पन्ने अशआर से भर गये।

एक दिन डायरी के पन्नों को उलटते पलटते हुए यह ख्याल आया कि मैं अपनी शायरी किसी को सुनाऊं या दिखाऊंगा नहीं तो मुझे कैसे समझ में आएगा कि मैं जो लिखता हूँ वह वाकई शायरी है भी या नहीं बहुत हिम्मत की मगर यह साहस पैदा नहीं हो पाया कि किसी को सुना सकूँ। फिर अचानक क्या सूझी कि मैं ने अपनी तीन गजलें कागज पर नोट कीं और उस समय के तीन बड़ी और मश्हूर पत्रिकाओं ₹शबखून₹ ₹शायर₹ और ₹सारिका₹ को पोस्ट कर दीं। हाँ! रचनाकार का नाम लिखते समय मैं ने अपने नाम की तरतीब बदल दी और मो खुर्शीद आलम खान की जगह मैं ने आलम खुर्शीद लिख दिया ताकि कोई मुझे पहचाने नहीं। मुझे हैरत हुई कि तीनों पत्रिकाओं से दस दिनों के अंदर ही जवाब आ गए कि मेरी गजलें अगले अंक में प्रकशित होंगी और वह प्रकाशित हुईं भी। यहीं से मेरा उत्साह बढ़ा और मेरी साहित्यिक यात्रा का आरंभ हुआ। मेरी रचनाएँ इसी नाम से उस समय की लगभग सभी देश-विदेश की पत्रिकाओं में लगातार छपने लगीं और दिनों दिन यह रफ़्तार और तेज होती गई । चूँकि मैं साहित्य के इतिहास से अनभिज्ञ था और क्लासिक साहित्य से बिलकुल ही अनजान था सो नौकरी में आने के कई साल बाद मैं ने वाराणसी से साहित्य में एम्-ए किया और उसी क्रम में उस्तादों के कलाम से लाभान्वित होने का मौका मिला।

वह कहते हैं कि इस में कोई संदेह नहीं, उर्दू की तरह हिंदी साहित्य में भी आज की सबसे लोकप्रिय विधा गजल है। हिंदी की साहित्यिक पत्रिकाओं में अच्छी खासी संख्या में गजलें प्रकाशित होती हैं, गजल विशेषांक छपते हैं और गजल संग्रह प्रकाशित हो रहे हैं। उर्दू या फारसी लिपि नहीं जानने वाले गजल-गो शायरों की कोशिशें देख कर मुझे सुखद आश्चर्य होता है क्योंकि उर्दू की अपेक्षा हिंदी में गजल का प्रचलन देर से आरंभ हुआ। हिंदी में उर्दू जैसी गजल परंपरा है, न स्कूल और न सीखने सिखाने का माहौल। सच्ची बात तो यह भी है कि उर्दू में छपने वाली गजलों का समग्र स्तरीय साहित्य आज भी देवनागरी लिपि में लिप्यंतर नहीं हो पाया है जिसे पढ़ कर उर्दू नहीं नहीं जानने वाले गजल प्रेमी गजल के सम्पूर्ण इतिहास और उस की विविधता से लाभ उठा सकें।'

नई पीढ़ी चूँकि उर्दू नहीं जानती इसलिए गजल के विभिन्न आयाम और बारीकियों से अंजान है। इस के बावजूद अपने मिजाज की सरसता और प्राकृतिक काव्यात्मक योग्यता के सहारे गजलें कही जा रही हैं औरअच्छी गजलें कही जा रही हैं। इस की प्रशंसा न करना बेईमानी होगी। उर्दू जानने वाले और उर्दू नहीं जानने वाले दोनों वर्गों में एक अच्छी संख्या ऐसे लोगों की है जो खुद भी गजल प्रेमी हैं, साहित्यकार हैं, आलोचक हैं और शुद्ध पाठक भी। मगर वह हिंदी पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाली गजलों से संतुष्ट नहीं हैं। पूछने पर इस का कारण यह बताया जाता है कि हिंदी पत्रिकाओं में छपने वाली अधिकतर गजलें नीरस,उबाऊ और तुकबंदी का नमूना मालूम होती हैं। मैं उन्हें यह जवाब देता हूँ उर्दू मेंछपने वाली तमाम गजलें भी उत्कृष्ट गजल का नमूना नहीं होतीं। आगे तर्क यह दिया जाता है कि हिंदी में तो गजल के कलापक्ष, व्याकरण और छंदशास्त्र भी बहुत कम नजर आता है। मैं जवाब में हिंदी पत्रिकाओं में छपने वाली कुछ गजलों के अशआर सुना देता हूँ और पूछता हूँ कि मुझे बताया जाए कि इन में क्या खामियां हैं? कहा जाता है कि यह अशआर अपवाद हैं। वास्तविकता यह है कि अधिकतर गजलें पढ़ कर यह महसूस होता है कि गजल के व्याकरण और छन्दशास्त्र का निर्वाह तो दूर की बात है हिंदी पत्रिकाओं में छपने वाले अधिकतर शायर गजल के स्वभाव से भी परिचित नजर नहीं आते। मैं यह तर्क देता हूँ कि धीरे धीरे सब सीख जायेंगे। मगर जवाब यह मिलता है कि सीखने की कोशिश ही नजर नहीं आती बल्कि अपनी गलतियों को छुपाने के लिए उसे ₹हिंदी गजल₹ का नाम दे दिया जाता है। मुझे कोई जवाब नहीं सूझता और निरुत्तर हो कर चुप हो जाता हूँ।

मेरी चुप्पी का कारण यह है कि अगर वाकई कुछ लोगों की ऐसी मानसिकता है तो यह बेहद घातक है। क्योंकि यह मानसिकता दूसरों को भी भटकाएगी और सीखने सिखाने और उत्थान के सारे मार्ग बंद कर देगी। देवनागरी में छपी गजल अगर रोमन में छाप दी जाए तो क्या वह अंग्रेजी गजल हो जाएगी? किसी विधा की बात कौन करे साहित्य का ही कोई धर्म नहीं होता, न किसी कौम, किसी देश या किसी भाषा का उस पर एकाधिकार होता है। उर्दू में भी गजल किसी और भाषा, किसी और देश से आई। गजल के छंद शास्त्र का निर्वाह न कर पाने की मजबूरी या संस्कृत के क्लिष्ट शब्द जो बोल चाल की भाषा में प्रचलित नहीं हैं , उनका इस्तेमाल कर के अगर कुछ गजल-प्रेमी मित्र उसे 'हिंदी गजल' का नाम देना चाहते हैं तो उन्हें उर्दू के उन शायरों का अंजाम मालूम होना चाहिए जो गजलों में 'गध गजल' या अरबी फारसी के क्लिष्ट शब्दों का इस्तेमाल कर के अपनी पहचान बनाने

की कोशिश कर रहे थे। आज किसी को न उन के अशआर यद् हैं और न उन का नाम। उर्दू के बह्र ओ औजान और हिंदी के छंद शास्त्र लगभग एक जैसे हैं उन से हटकर इन मित्रों ने अगर गजल का नया छन्दशास्त्र गढ़ लिया है तो उसे सामने आना चाहिए।

जहाँ तक गलतियों का सवाल है तो यह मानव के स्वभाव में है। परिपक्वता के साथ साथ गलतियाँ सुधरती जाती हैं। गलतियों से तो वो शायर भी नहीं बच पाए जो आज क्लासिक की श्रेणी में आते हैं तो दूसरों की कौन बात करे! लेकिन गलतियों के कारण किसी को सीधे रद्द भी नहीं किया जा सकता। गजल वैसे भी एक बेहद नाजुक विधा है। इस की तमाम नजाकतों का निर्वाह करना बहुत मुश्किल काम है। पारंगत होने में समय लगता है। उन की गलतियां तो वैसे भी क्षम्य हैं जो गलतियों से अनजान हैं। लेकिन क्या यह अच्छा नहीं होगा कि गलतियों को छुपाने के बदले उन्हें सुधारने की कोशिश की जाए ? गजल में अपनी पहचान बनाने की इच्छा रखने वाले मित्र गजल के मिजाज, इस की बारीकियां और गजल के कलापक्ष और इस के छन्दशास्त्र से अवगत होने की कोशिश करें? निस्संदेह यह कोशिश उन गजल-मित्रों के हित में होगी और गजल के हित में भी। हर भाषा और संस्कृति की कुछ अपनी विशेषताएं होती हैं जिन का समावेश गजल में नए आयाम पैदा करेगा और गजल को और समृद्ध करेगा। उर्दू न जाननेवाले गजल प्रेमी इस बात पर गंभीरता से विचार करें क्योंकि इस के बगैर वह अपनी योग्यता का भरपूर इस्तेमाल नहीं कर पाएँगे।

मुझे खुशी है कि मेरी नजर में नई पीढ़ी के एक दो नहीं दर्जनों ऐसे शायर हैं, जो पूरी गंभीरता से गजल की तमाम बारीकियों का निर्वाह करते हुए अशआर कह रहे हैं और अपनी गजलों से गजल प्रेमियों को प्रभावित कर रहे हैं। सो गजल के बेहतर भविष्य के प्रति मैं काफी आशान्वित हूँ।

आलम खुर्शीद की तीन गजलें

एक

जब जब धरती खून से गीली हो जाती है।
कोई न कोई तह पथरीली हो जाती है।

वक्त बदन के जख्म तो भर देता है लेकिन
दिल के अंदर कुछ तब्दीली हो जाती है।

पी लेता हूँ अमृत जब मैं विष के बदले,
काया-रंगत और भी नीली हो जाती है।

पूछ रहे हैं मुझ से पेड़ों के सौदागर,
आब ओ हवा कैसे जहरीली हो जाती है।

मुद्दत में उल्फत के फूल खिला करते हैं,
पल में नफरत छैल-छबीली हो जाती है।

मूरख! उस के माया जाल से बच के रहना,
जब-तब उस की रस्सी ढीली हो जाती है।

गूंथ रहा शब्दों को नर्मी से लेकिन
जाने कैसे बात नुकीली हो जाती है।

दर्द की लहरों को सुर में ढालो आलम,
बंसी की हर तान सुरीली हो जाती है।

दो

जब भी फसलों को पानी की ख्वाहिश हुई।
मेरे खेतों में शोलों की बारिश हुई।

मेरा घर टुकड़ों, टुकड़ों में बँटने को है,
मेरे आँगन में कैसी ये साजिश हुई।

मकड़ियों ने वहाँ जाल फैला दिए,
जिस जगह भी हमारी रिहाइश हुई।

चीखता हूँ मगर कोई सुनता नहीं
मेरी आवाज पर कैसी बंदिश हुई।

जिस्म पर रेंगती छिपकिली देखकर
मेरे बेजान हाथों में जुंबिश हुई।

लोग आए थे हाथों में पत्थर लिए,
कल मेरे शहर में इक नुमाइश हुई।

तीन

सुलगती रेत पे रौशन सराब रख देना।
उदास आँखों में खुशरंग ख़्वाब रख देना।

सदा से प्यास ही इस ज़िन्दगी का हासिल है,
मेरे हिसाब में ये बेहिसाब रख देना।

वफा, खुलूस, मुहब्बत, सराब ख़्वाबों के,
हमारे नाम ये सारे अजाब रख देना।

सुना है चाँद की धरती पे कुछ नहीं उगता,
वहाँ भी गोमती, झेलम, चिनाब रख देना।

कदम कदम पे घने कैक्टस उग आए हैं,
मेरी निगाह में अक्से-गुलाब रख देना।

मैं खो न जाऊँ कहीं तीरगी के जंगल में,
किसी शजर के तले आफताब रख देना।

गीत-नवगीत

टूटे खपरैल-सी

माहेश्वर तिवारी

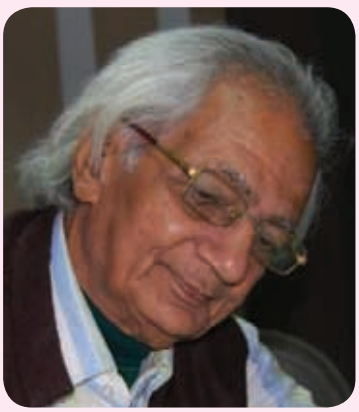

गर्दन पर, कुहनी पर
जमी हुई मैल-सी ।
मन की सारी यादें
टूटे खपरैल-सी ।

आलों पर जमे हुए
मकड़ी के जाले,
ढिबरी से निकले
धब्बे काले-काले,
उखड़ी-उखड़ी साँसे हैं
बूढे बैल-सी ।

हम हुए अंधेरों से
भरी हुई खानें,
कोयल का दर्द यह
पहाड़ी क्या जाने,
रातें सभी हैं
ठेकेदार की रखैल-सी।

हवा पहाड़ी

बुद्धिनाथ मिश्र

वह हवा पहाड़ी
नागिन-सी जिस ओर गई
फिर दर्द भरे सागर में
मन को बोर गई ।

चादर कोहरे की ओढ़े
यायावर सोते
लहरों पर बहते फूल
कहीं अपने होते?

देहरी-देहरी पर
धर दूधिया अंजोर गई
चुपके-से चीड़ों के कन्धे झकझोर गई ।

कच्चे पहाड़-से ढहते
रिश्तों के माने
भरमाते पगडण्डी के
ये ताने-बाने ।

कसमों के हर नाजुक
रेशे को तोड़ गई
झुरमुट में कस्तूरी यादों की छोड़ गई ।

सीढ़ी-सीढ़ी उतरी
खेतों में किन्नरियाँ
द्रौपदी निहारे बैठ
अशरफी की लड़ियाँ ।

हल्दी हाथों को
भरे दृगों से जोड़ गई
मौसम के सारे पीले पात बटोर गई ।

फिर समूचा एक दिन बीता

रामकुमार कृषक

फिर समूचा एक दिन बीता
रह गया आधा-अधूरा आदमी रीता

रोटियाँ-रुजगार
भागमभाग
झिड़कियाँ-झौं-झौं कई खटराग
हर समय हर पल लहू पीता

बंद कमरों में
खुला आकाश
वाह ! क्या जीदारियत, शाबाश
बहस का मैदान तो जीता

कारखाने-खेत औ'
फुटपाथ
हाथ सबके साथ कितने हाथ
कह रही कुछ और भी गीता !

गीत-नवगीत

कदम कदम दहशत के साये

लक्ष्मीशंकर वाजपेयी

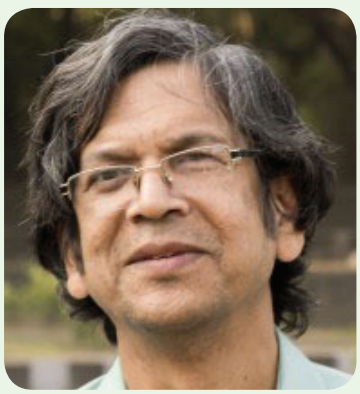

कदम कदम दहशत के साए !
जीते हैं भगवान भरोसे ।

इस दूषित मिलावटी युग में, जो साँसें लीं या जो खाया
नहीं पता जाने अनजाने, दिन भर कितना जहर पचाया
हद तो ये है दवा न जाने राहत दे या मौत परोसे
जीते हैं भगवान भरोसे।

घर से बाहर कदम पड़े तो शंकित मन घबराए
घर में माँ पत्नी पल पल देवी देवता मनाये
सड़क निगल जाती है पल में बरसों के जो पाले पोसे
जीते हैं भगवान भरोसे।

नहीं पता कब कहाँ दरिंदा बैठा घात लगाए
हँसते गाते जीवन के चिथड़े चिथड़े कर जाए
एक धमाका छुपा हुआ लगता है गोशे गोशे
जीते हैं भगवान भरोसे।

रोज हादसों की सूची पढ़ सुन कर मन डर जाए
बहुत बड़ी उपलब्धि मृत्यु जो स्वाभाविक मिल जाए
आम आदमी के वश में बस जिसको जितना चाहे कोसे
जीते हैं भगवान भरोसे।

मेरे गाँव में

जय चक्रवर्ती

खुल गया है बंधु!
शॉपिंगमॉल मेरे गाँव में

लगी सजने कोक, पेप्सी
ब्रेड, बर्गर और
पिज्जा की दुकानें
आँख मे पसरे हुए हैं
स्वप्न
मायावीझप्रगति का छत्र तानें
आधुनिकता का बिछा है
जाल मेरे गाँव में

हँस रहें हैं
पत्थरों के वन
सिवानों और खेतों के वदन पर
ढूँढती दर-दर
सुबह से शाम गौरैया
वही घरझ्रवही छप्पर
हैं हताहत कुएं, पोखर,
ताल मेरे गाँव में

उत्सवों की पीठ पर
बैठे हुए हैं
बुफे, डीजे और डिस्को
स्नेह, स्वागत,
प्यार या मनुहार वाले स्वर
यहाँ अब याद किसको
मौन है अब गाँव की
चौपाल मेरे गाँव में

रचनाकारों के धयानार्थ

समय से प्रकाशन के लिए रचनाएं वर्ड फाइल, यूनिकोड हिंदी फॉन्ट में ही ई-मेल kavikumbh@gmail.com पर प्रेषित करना सुविधाजनक होगा, अन्यथा तकनीकी कारणों से उनके प्रकाशन में अनावश्यक विलंब संभव है।

रचना अप्रकाशित हो अथवा प्रकाशित, वह 'कविता के नाम पर कविता' जैसी नहीं, बल्कि स्तरीय हो। उसके साथ आपकी फोटो, परिचय, पिनकोड-फोन नंबर सहित डाक पता जरूरी है ताकि संबंधित अंक आपको उपलब्ध कराया जा सके।

पत्रिका रजिस्टर्ड डाक से केवल 'कविकुंभ' सदस्य परिवार को ही प्रेषित की जाती है। रचनाकारों एवं अन्य सुधीजन के लिए पत्रिका सामान्य डाक से भेजना विवशता है।

पत्रिका में प्रकाशित अथवा अप्रकाशित समकालीन साहित्यिक विषयों पर आपकी रचनात्मक सहमति-असहमति, पत्र एवं विषयगत सुझावों का स्वागत है।

गज़ल

सहरा-पसंद हो के सिमटने लगा हूँ मैं

मुनव्वर राना

सहरा-पसंद हो के सिमटने लगा हूँ मैं
अँदर से लग रहा हूँ कि बँटने लगा हूँ मैं

क्या फिर किसी सफर पे निकलना है अब मुझे
दीवारो-दर से क्यों ये लिपटने लगा हूँ मैं

आते हैं जैसे- जैसे बिछड़ने के दिन करीब
लगता है जैसे रेल से कटने लगा हूँ मैं

क्या मुझमें एहतेजाज की ताकत नहीं रही
पीछे की सिम्त किस लिए हटने लगा हूँ मैं

फिर सारी उम्र चाँद ने रक्खा मेरा खयाल
एक रोज कह दिया था कि घटने लगा हूँ मैं

उसने भी ऐतबार की चादर समेट ली
शायद जबान दे के पलटने लगा हूँ मैं

कब तक कोई सहमेगा

डॉ वशिष्ठ अनूप

जो भूखा है छीन झपटकर खाएगा
कब तक कोई सहमेगा, शरमाएगा

अपनी भाषा घी शक्कर सी होती है
घैर की भाषा बोलेगा हकलाएगा

चुप रहने का निकलेगा अंजाम यही
धीरे धीरे सबका लब सिल जाएगा

झूठ बोलना हरदम लाभ का सौदा है
सच बोला तो जान से मारा जाएगा

जारी करता है वह फतवे पर फतवा
नंगा दुनिया को तहजीब सिखाएगा

मजबूरी ही नहीं जरूरत है युग की
गठियल हाथों में परचम लहराएगा

किसे मालूम चेहरे कितने

कमलेश भट्ट 'कमल'

किसे मालूमङ्क चेहरे कितने आखिरकार रखता है।
सियासतदाँ है वोङ्क खुद में कई किरदार रखता है।

किसी भी साँचे में ढल जाएगा अपने ही मतलब से
नहीं उसका कोई आकारङ्क हर आकार रखता है।

निहत्था देखने में हैङ्क बहुत उस्ताद है लेकिन
जेहन में वो हमेशा ढेर सारे वार रखता है।

जमीं तक है नहीं पैरों के नीचे और दावा है
वो अपनी मुट्ठियों में बाँधकर संसार रखता है।

बचाने के लिए खुद कोङ्क डुबो सकता है दुनिया को
वो अपने साथ ही हरदम कई मझधार रखता है।

रोजाना बदलता है बहुत कुछ

लीलाधर जगूड़ी

खिड़की से तालाब दिख रहा है धुँधाया आसमान
लगता है आज सूरज दिखेगा नहीं

पहले देखे कई दिनों की वजह से जानता हूँ
कि जो जैसा दिखता है वैसा निकलता नहीं
और जो जैसा दिखाया जाता है आखिर वैसा होता नहीं

जो जैसा न हो उसे वैसा दिखाओ तो कहते हैं
आनंददायक ही नहीं मजेदार भी है
जितने को तितना दिखाओ तो कहेंगे मजा नहीं आया
ऐसे में असली होना भी कितना नीरस हो जाना होता है

व्यक्ति हो या आसमान रोजाना बदलता है बहुत कुछ
जो बदल जाता है वह कैसे रह पाएगा एक जैसा
देखना फिर सोचना फिर पाने न पाने की जगह और कुछ पा लेना
बदलता रहता है मनुष्य को
असली होने के लिए भी बदलते रहना पड़ता है
परिवर्तन भी पलायन जैसा दिखने लगता है

कितना लाचार और छोटा होता जा रहा है वह
ज्ञान से सींच-सूँचकर मरने से बचा रहा है ईर्ष्या को
किताबों से बाँच-बूँचकर
नकल में स्याही पोतता जा रहा है ज़िंदगी पर
कुछेक शब्दों को ही वाक्यों में फेरता जा रहा है
तालाब जैसे धुँधाये आसमान में
न खेने लायक पानी न दम साधने लायक किनारा है
पहले देखे ऐसे कई नजारों की वजह से जानता हूँ
कि जो जैसा दिखता है आखिर वैसा निकलता नहीं।

कविताएँ

नरेश सक्सेना

जैसे चिड़ियों की उड़ान में
शामिल होते हैं पेड़
क्या कविताएँ होंगी मुसीबत में हमारे साथ?

जैसे युद्ध में काम आए
सैनिक की वर्दी और शस्त्रों के साथ
खून में डूबी मिलती है उसके बच्चे की तस्वीर
क्या कोई पंक्ति डूबेगी खून में?

जैसे चिड़ियों की उड़ान में शामिल होते हैं पेड़
मुसीबत के वक़्त कौन सी कविताएँ होंगी हमारे साथ
लड़ाई के लिए उठे हाथों में
कौन से शब्द होंगे?

धन्यवाद-ज्ञापन

विष्णु नागर

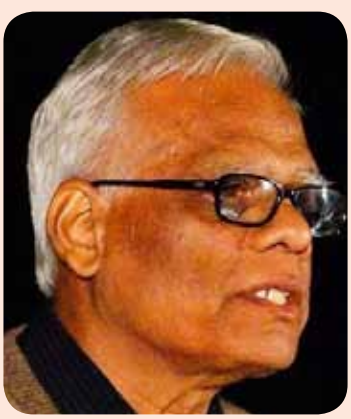

धन्यवाद ज्ञापन के बाद
कार्यक्रम समाप्त हुआ
लोग अपने-अपने घर
(या कहीं और चले गए)

उन्होंने खाना खाया, टी०वी० देखा
और सोने चले गए

नींद में फिर से आयोजक
न जाने क्यों चला आया
उसने इनका, उनका, विनका
जाने किन-किन का
यहाँ तक कि उस कार्यक्रम में उपस्थित
मक्खियों-मच्छरों तक का धन्यवाद किया
सिर्फ.वह उनका नाम लेना भूल गया
जबकि ये तो मंच पर उपस्थित थे

ये चौंक कर
बल्कि घबराकर बिस्तर से उठ बैठे
उसके बाद रात भर ये सोचते रहे, कुछ-कुछ
सुबह उन्होंने पहला काम यह किया
कि आयोजक को फोन किया
उससे कहा- 'तेरी ऐसी-तैसी'
और फोन रख दिया
फिर गाने लगे
टि ट रि ट् टी

हर कहीं सब कहीं

दिविक रमेश

देख लीजिए न नरेन्द्र जी को
हैं न 'कहीं'।
और राजेश जी को भी
कैसे तो विराजमान हैं वे भी 'कहीं'।
इन्हें ही देख लीजिए
और उन्हें भी
तभी तो छाए हैं न अखबार के कॉलम से।

देखिए तो इनके चेहरे
इन्हें क्या परवाह उनकी
और अब देख लीजिए उनके भी चेहरे
उन्हीं का कौन बाँध सकता है घर घाम में।

अपनी अपनी हवा है
अपना अपना बदन
अपना अपना आकार है
अपना अपना समाचार

खबरदार
खबरदार
खबरदार

जान लेना चाहिए
कि हर बड़ा है वही
जो दिखता है 'कहीं'।
और एक आप हैं मियाँ दिविक
जो हैं ही नहीं कहीं

न कोई अपनी हवा है
न बदन ही
न कोई अपना आकार है
न समाचार ही।

मुझे तो शक है
कोई पूछेगा भी जब पड़ोगे बीमार
आ चला बुढ़ापा अब कुछ सोचो भी यार
काहे की फसल जब खेत है न क्यार।

''अरे'' भाई यह कैसी खिटपिट यह कैसी तकरार
अब छोड़ो भी रटन्त और यह तुकान्त
यह आर आर
तुमने तो बना डाला
आदमी का भी अचार

मानता हूँ नहीं हूँ 'कहीं' मैं
पर जानता हूँ
जो होता नहीं 'कहीं'
होता है 'सब कहीं'
और मानेंगे न आप भी
कि असल तो वही होता है
जो 'सब कहीं' होता है
जैसे कि हवा
जैसे कि आग
जैसे कि साँस
जैसे कि आस।

कोई भी हो यात्रा
यहीं से शुरू होती है
और यहीं पर खत्म भी।
युद्ध हो या शांति
भीख हो या क्रांति
यहीं से जन्म लेती है
और यहीं पर दफन।

हिलाने पर वृक्ष
वृक्ष ही हिलता है
मरने पर आदमी
आदमी ही मरता है।

लगता होगा किसी को अच्छा
किसी के उतारना कपड़े
किसी को मारना भूखा
किसी को रखना दरिद्र
ऐश करना किसी की छाती पर
पर अन्ततः करता है एक ही यात्रा
एक ही यात्रा
जैसे करता है कलैण्डर
जनवरी से दिसंबर तक
(जानते हैं न ज से जनवरी, ज से जन्म
दि से दिसम्बर, दि से दिवंगत)

इसीलिए तो
नहीं अफसोस मुझे
कि मैं नहीं हूँ 'कहीं'
पर हूँ तो
और खुशी है मुझे
कि हो सकता हूँ 'हर 'कहीं'।'

लो फिर कहूँ
होता तो वही है सही
जो होता है सब कहीं
जैसे कि आदमी
जैसे कि प्रश्न।

बची हुई जगहें

मंगलेश डबराल

रोज कुछ भूलता कुछ खोता रहता हूँ
चश्मा कहाँ रख दिया है कलम कहाँ खो गया है
अभी-अभी कहीं पर नीला रंग देखा था वह पता नहीं कहाँ चला गया
चिट्ठियों के जवाब देना कर्ज.की किस्तें चुकाना भूल जाता हूँ
दोस्तों को सलाम और विदा कहना याद नहीं रहता
अफसोस प्रकट करता हूँ कि मेरे हाथ ऐसे कामों में उलझे रहे
जिनका मेरे दिमाग से कोई मेल नहीं था
कभी ऐसा भी हुआ जो कुछ भूला था उसका याद न रहना भूल गया

माँ कहती थी उस जगह जाओ
जहाँ आखिरी बार तुमने उन्हें देखा उतारा या रखा था
अमूमन मुझे वे चीजें फिर से मिल जाती थीं और मैं खुश हो उठता
माँ कहती थी चीजें जहाँ होती हैं
अपनी एक जगह बना लेती हैं और वह आसानी से मिटती नहीं
माँ अब नही है सिर्फ.उसकी जगह बची हुई है

चीजें खो जाती हैं लेकिन जगहें बनी रहती हैं
जीवन भर साथ चलती रहती हैं
हम कहीं और चले जाते हैं अपने घरों लोगों अपने पानी और पेड़ों से दूर
मैं जहाँ से एक पत्थर की तरह खिसक कर चला आया
उस पहाड़ में भी एक छोटी सी जगह बची होगी
इस बीच मेरा शहर एक विशालकाय बांध के पानी में डूब गया
उसके बदले वैसा ही एक और शहर उठा दिया गया
लेकिन मैंने कहा यह वह नहीं है मेरा शहर एक खालीपन है

घटनाएँ विलीन हो जाती हैं
लेकिन जहां वे जगहें बनी रहती हैं जहां वे घटित हुई थीं
वे जमा होती जाती हैं साथ-साथ चलतीं हैं
याद दिलाती हुईं कि हम क्या भूल गया हैं और हमने क्या खो दिया है।

जाल

पद्मा सचदेव

सुनो
सुनो तो सही

मेरे आसपास बँधा हुआ ये जाल मत तोड़ो
मैंने सारी उम्र इसमें से निकलने का यत्न किया है
इससे बँधा हुआ काँटा-काँटा मेरा परिचित है
पर ये सारे हीं काँटे मरते देखते-देखते उगे हैं
रात को सोने से पहले
मैं इनके बालों को हाथो से सहलाकर सोयी थी
और सुबह उठते हीं
इनके वो मुँह तीखे हो गये हैं
तो दोष किसका है दोस्त!

सुनो,
मिन्नत करती हूँ सुनो तो सही
मुझे फूलों की जरूरत नहीं है
उनके रंगों को देखकर जो खुश होती
वो नजर नहीं रही
इस जाल की खुशबू मेरी साँसों में बंध गयी है
मैं फूलों को लेकर क्या करूँगी

सुनो,
मैं तुम्हारी मिन्नत करती हूँ
सुनो, मेरा जाल मत काटो
मुझे परबस रहने दो
मुझे इस जाल के भीतर
बड़ा चैन मिलता है मित्तर!

इसमें से निकलने के जितने हीले
मुझे इसके बीच रहकर सूझते हैं
इसके बाहर वो कहाँ
उम्र की यह कठिन बेला
मुझे काटने दो इस जाल के भीतर दबकर
चलो, अब दूर हो जाओ
जाल के काँटों के बहुत-से मुँह
मेरे कलेजे में खुभे हुए हैं
जाल काटते हीं अगर ये मुझमें टूट गये
तो मत पूछो क्या होगा
बुजुर्ग कहते हैं---
टूटे हुए काँटों का बड़ा दर्द होता है।

स्त्री

ममता किरण

स्त्री झाँकती है नदी में
निहारती है अपना चेहरा
सँवारती है अपनी टिकुली, माँग का सिन्दूर
होठों की लाली, हाथों की चूड़ियाँ
भर जाती है रौब से
माँगती है आशीष नदी से
सदा बनी रहे सुहागिन
अपने अन्तिम समय
अपने सागर के हाथों ही
विलीन हो उसका समूचा अस्तित्व इस नदी में।

स्त्री माँगती है नदी से
अनवरत चलने का गुण
पार करना चाहती है
तमाम बाधाओं को
पहुँचना चाहती है अपने गन्तव्य तक।

स्त्री माँगती है नदी से सभ्यता के गुण
वो सभ्यता जो उसके किनारे
जन्मी, पली, बढ़ी और जीवित रही।

स्त्री बसा लेना चाहती है
समूचा का समूचा संसार नदी का
अपने गहरे भीतर
जलाती है दीप आस्था के
नदी में प्रवाहित कर
करती है मंगल कामना सबके लिए
और...
अपने लिए माँगती है
सिर्फ नदी होना।

मैं आजाद हुई हूं

रमणिका गुप्ता

खिड़कियां खोल दो
शीशे के रंग भी मिटा दो
परदे हटा दो
हवा आने दो
धूप भर जाने दो
दरवाजा खुल जाने दो

मैं आजाद हुई हूं

सूरज आ गया है मेरे कमरे में
अंधेरा मेरे पलंग के नीचे छिपते-छिपते
पकड़ा गया है
धक्के लगाकर बाहर कर दिया गया है उसे
धूप से तार-तार हो गया है वह
मेरे बिस्तर की चादर बहुत मुचक गई है
बदल दो इसे
मेरी मुक्ति के स्वागत में
अकेलेपन के अभिनन्दन में

मैं आजाद हुई हूं

गुलाब की लताएं
जो डर से बाहर-बाहर लटकी थीं
खिड़की के छज्जे के ऊपर
उचक-उचक कर खिड़की के भीतर
देखने की कोशिश में हैं
कुछ बदल-सा गया है

सहमे-सहमे हवा के झोंके
बन्द खिड़कियों से टकरा कर लौट जाते थे
अब दबे पांव
कमरे के अन्दर ताक-झांक कर रहे हैं

हां! डरो मत! आओ न!
भीतर चले आओ तुम
अब तुम पर कोई खिड़कियां
बन्द करने वाला नहीं है
अब मैं अपने वश में हूं
किसी और के नहीं
इसलिए रुको मत

मैं आजाद हुई हूं

कई दिनों से घर के बाहर
बच्चों ने आना बन्द कर दिया था
मुझे भी उनकी चिल्लाहट सुने
लगता था युग बीत गया
आज अचानक खिड़कियां खुलीं देख
दरवाजे.खुले देख
शीशों पर मिटे रंग और परदे हटे देख
वे भौंचक-से फुसफसा रहे हैं
कमरे की दीवार से सटे-सटे

जोर से बोलो न
चिल्लाओ न जी भर कर
नहीं
मैं कोई परदेश से नहीं लौटी हूं
नई नहीं हूं इस घर में
बरसों से रहती हूं
खो गई थी किसी में
आज अपने आपको मिल गई हूं
अपनी आवाज और अपनी बोली भी भूल गई थी
सुनना भी भूल गई थी
सुनाना भी
अब सनने लगी हूं
इसलिए खूब बोलो
दीवारों से सटकर नहीं
खिड़कियों से झांक कर हंसकर चिल्लाओ
कोई तुम्हें रोकने वाला नहीं है

मैं आजाद हुई हूं

अब आजाद हैं सभी
मेरा शयनकक्ष भी
जो एक बन्दी-गृह बन गया था
बन्द हो गया था तहखाने की तरह
तिलस्म के जादू के ताले पड़ गए थे जिस पर
आज खुल गया है

मैं आजाद हुई हूं!

आजकल मैं मन का करती हूँ

चित्रा देसाई

आजकल मैं मन का करती हूँ।
हाथों को गर्म कॉफी से
और रूह को
फैज की नज्मों से सेंकती हूँ।
हर सुबह पेपर में छपी खबरों पर,
इत्मीनान से बहस करती हूँ।
सरसों का साग, बथुए की रोटी,
कभी गुड़, कभी हरी मिर्च से कुतरती हूँ।
अपनी खिड़की पर,
गमलों में उगी खेती को,
पानी से सींचती हूँ।
दोपहर को दोस्तों का हाथ पकड़,
गली मोहल्ले की बातों से लिपटती हूँ।
शाम को -
आवारगी से घूमते हुए,
पेड़ों की कलगी पर,
चिड़ियों का कलरव सुनती हूँ।
बचे - खुचे पेड़ों पर
पंछी नीड़ बना पाएं,
ऐसी कोशिश में शामिल होती हूँ।
सांझ ढले
अपने गाँव की मिटटी को
दूर से ही सहलाती हूँ

मेरे दोस्त कहते हैं
आजकल मैं कुछ नहीं करती
क्योंकि -

आजकल मैं मन का करती हूँ।

सीता नहीं मैं

आभा बोधिसत्त्व

तुम्हारे साथ वन-वन भटकूँगी
कंद-मूल खाऊँगी
सहूँगी वर्षा आतप सुख-दुख
तुम्हारी कहाऊँगी
पर सीता नहीं मैं
धरती में नहीं समाऊँगी।

तुम्हारे सब दुख सुख बाटूँगी
अपना बटाऊँगी
चलूँगी तेरे साथ पर
तेरे पदचिन्हों से राह नहीं बनाऊँगी
भटकूँगी तो क्या हुआ
अपनी राह खुद पाऊँगी
मैं सीता नहीं हूँ
मैं धरती में नहीं समाऊँगी।

हाँ.....सीता नहीं मैं
मैं धरती में नहीं समाऊँगी
तुम्हारे हर ना को ना नहीं कहूँगी
न तुम्हारी हर हाँ में हाँ मिलाऊँगी
मैं सीता नहीं हूँ
मैं धरती में नहीं समाऊँगी।

मैं जन्मीं नहीं भूमि से
मैं भी जन्मी हूँ तुम्हारी ही तरह माँ की
कोख से
मेरे जनक को मैं यूँ ही नहीं मिल गई थी कहीं
किसी खेत या वन में
किसी मंजूषा या घड़े में।

बंद थी मैं भी नौ महीने
माँ ने मुझे जना घर के भीतर
नहीं गूँजी थाली बजने की आवाज
न सोहर
तो क्या हुआ
मेरी किलकारियाँ गूँजती रहीं
इन सबके ऊपर
मैं कहीं से ऐसे ही नहीं आ गई धरा पर
नहीं मैं बनाई गई काट कर पत्थर।

मैं अपने पिता की दुलारी
मैं माँ कि धिया
जितना नहीं झुलसी थी मैं
अग्नि परीक्षा की आँच से
उससे ज्यादा राख हुई हूँ मैं
तुम्हारे अग्नि परीक्षा की इच्छा से
मुझे सती सिद्ध करने की तुम्हारी सदिच्छा।

मैं पूछती हूँ तुमसे आज
नाक क्यों काटी शूर्पणखा की
वह चाहती ही तो थी तुम्हारा प्यार
उसे क्यों भेजा लक्ष्मण के पास
उसका उपहास किया क्यों
वह राक्षसी थी तो क्या
उसकी कोई मयार्दा न थी

क्या उसका मान रखने की तुम्हारी कोई मयार्दा न थी
तुम तो पुरुषोत्तम थे
नाक काट कर किसी स्त्री की
तुम रावण से कहाँ कम थे।
तुमने किया एक का अपमान
तो रावण ने किया मेरा
उसने हरण किया बल से मेरा
मैं नहीं गई थी लंका
हँसते खिलखिलाते
बल्कि मैं गई थी रोते बिलबिलाते
अपने राघव को पुकारते चिल्लाते
राह में अपने सब गहने गिराते
फिर मुझसे सवाल क्यों
तुम ने न की मेरी रक्षा
तो मेरी परीक्षा क्यों

बाँटे मैंने तुम्हारे सब दुख-सुख
पर तुमने नहीं बाँटा मेरा एक दुख
मेरा दुख तुम तो जान सकते पेड़ पौधों से
पशु-पंछिओं से
तुम तो अन्तयार्मी थे
मन की बात समझते थे
फिर क्यों नहीं सुनी
मेरी पुकार।

मुझे धकेला दुत्कारा पूरी मयार्दा से
मुझे घर से बाहर किया पूरी मयार्दा से
यदि जाती वन में रोते-रोते
तो तुम कैसे मयार्दा पुरुषोत्तम होते
मेरे कितने प्रश्नों का तुम क्या दोगे उत्तर
पर हुआ सो हुआ चुप यही सोच कर
अब सीता नहीं मैं
सिर्फ तुम्हारी दिखाई दुनिया नहीं है मेरे आगे

अपना सुख दुख मैं अकेले उठाऊँगी
याद करूँगी हर पल हर दिन तुम्हें
पर धरती में नहीं समाऊँगी।
सीता नहीं मैं
मैं आँसू नहीं बहाऊँगी।
सीता नहीं मैं
धरती में मुँह नहीं छिपाऊँगी
धरती में नहीं समाऊँगी।

उत्तराखंड के शब्द-साधक डॉ गिरिजाशंकर त्रिवेदी

मेरे मन पर उनकी आत्मीयता की कई परतें : डॉ बुद्धिनाथ मिश्र

मूलतः कानपुर (उ.प्र.) के गांव अनेई के रहने वाले एवं विद्या वाचस्पति सहित अनेक सम्मानों से समादृत कवि डॉ गिरिजाशंकर त्रिवेदी को उत्तराखंड के लोग आज भी विस्मृत नहीं कर सके हैं। उनकी प्रमुख कृतियां हैं - इंद्रालय, ज्योतिरथ, वाल्मीकि के वन और वृक्ष, इंद्रधनुष कसे बिजली के डोर, तुलसी के मंगल दल आदि। प्रतिष्ठित गीत-कवि डॉ बुद्धिनाथ मिश्र लिखते हैं - 'आजीवन वह देवभूमि के प्रांगण में ऐसे तुलसी-वृक्ष की तरह रहे, जिसकी मंजरियों को छूकर हवाएं सुवासित होती रहीं और पत्तियां हर अर्पण का नैवेद्य बन गईं। मेरे मन पर उनकी उत्मीयता की कई परतें हैं।

कवि डॉ गिरिजाशंकर त्रिवेदी के जीवन की कोई एक बंधी-बंधाई दिशा नहीं रही। तमाम विरोधाभासों के घने कोहरे के भीतर वह आराम से अपने व्यक्तित्व और कर्ततृत्व के ताने-बाने बुनते रहे। उनके बारे में सोचते हुए अक्सर लोग असमंजस में पड़ जाते हैं कि उनका व्यक्तित्व बड़ा था कि रचनाकार। वह संस्कृत के पंडित और आधुनिक चेतना के पुंज भी, पारिवारिक भी और समाजसेवी भी, साहित्यकार भी, पत्रकार भी, आचार्य भी और चिरजिज्ञासु छात्र भी। आजीवन वह देवभूमि के प्रांगण में ऐसे तुलसी-वृक्ष की तरह रहे, जिसकी मंजरियों को छूकर हवाएं सुवासित होती रहीं और पत्तियां हर अर्पण का नैवेद्य बन गईं। उनको देहरादून के लोग श्रद्धा और आत्मीयता से 'गुरुजी' कहते थे। वे ज्ञान की पूंजी से व्यापार करने वाले आज के शिक्षकों से कदापि भिन्न थे। उनका पूरा जीवन शास्त्र को व्यवहार में उतारने में बीता। शिशु अवस्था में ही बघेरा उन्हें घर से उठा ले गया था। क्षत-विक्षत हालत में छोड़ गया। बाद में पढ़ाई भी टाट-पट्टी वाली पाठशाला में हुई। मल्ल विद्या भी सीखी। आसपास के गांवों से अपनी पहलवानी के पुरस्कार बटोरे। कभी रामलीला के लक्ष्मण के रूप में प्रशंसित हुए तो कभी अदम्य जिजीविषा के साथ कवि-सम्मेलनों के मंचों पर पुजने लगे। उनकी बहुमुखी प्रतिभा से जान-पहचान के लोग चकित हो उठे।

भले उनका जन्म वसंत में हुआ, पूरा जीवन ग्रीष्म से तपता रहा। एक-एक पथ साधने के लिए उन्हें कई-कई पत्थर हटाने पड़े। कानपुर से जमी-जमाई नौकरी छोड़कर जब वह देहरादून के डीएवी कॉलेज के प्रवक्ता के रूप में आए, हर दिन अपमान का घूंट पीना पड़ा। कनिष्ठ को उनके सिरहाने थोप दिया गया।

डॉ बुद्धिनाथ मिश्र और माहेश्वर तिवारी के साथ समादृत क्षणों में डॉ गिरिजाशंकर त्रिवेदी

ईर्ष्यालु सहकर्मियों के उकसावे पर छात्र उनका महीने भर तक बहिष्कार करते रहे लेकिन इरादे के मजबूत डॉ त्रिवेदी ने हार नहीं मानी। कालांतर में उनकी सुयोग्यता कॉलेज के हर शिक्षक और छात्र की साधना का स्वर बन गई। अध्यापन से बचे खाली समय में वह स्कूटर लेकर छात्र-शिक्षक, परिचित-सुपरिचित-अपरिचित किसी की भी मदद के लिए निकल पड़ते। वह संस्कृत और हिंदी, दो विषयों से एमए थे। एक ही समय में दोनों विषयों के प्रवक्ता का दायित्व भी उन पर रहा। जून 1974 में उनके बुलावे पर काव्यपाठ के लिए जब मैं देहरादून पहुंचा तो पहली ही मुलाकात के कुछ घंटों में उनकी आत्मीयता की कई परतें मन पर जम गईं। उनकी कृतियां इस बात की साक्षी हैं कि उनकी शब्द साधना दोनों भाषाओं में चलती रही। वह मलयालम भी सीख गए और उसके लिए उन्हें स्वर्ण पदक भी मिला। नवों काव्य-रसों के मर्मज्ञ, बेहद सात्विक और ऋजु-व्यक्तित्व के स्वामी भी। एवरेस्ट फतह करने वाली बचेंद्री पाल भी उनके छात्र-शिष्यों में रही हैं।

डॉ रामधारी सिंह दिनकर के साथ डॉ त्रिवेदी

डॉ त्रिवेदी का रचना-संसार अत्यंत विस्तृत और बहुआयामी है। उनके गीतों में उत्तर-छायावादी काल का वैभव परिलक्षित होता है तो दूनघाटी की हरीतिमा पर भी कई-कई पुस्तकें। उनकी प्रतिभा का एक और छोर राष्ट्रीय पत्रकारिता में हस्तक्षेप करता रहा। वह अपने जेब-खर्च से साप्ताहिक 'नवोदित स्वर' भी निकालते रहे। यद्यपि इसके पीछे उनके पुत्र रजनीश त्रिवेदी की प्रारंभ में बाल-सुलभ कुशलता रही लेकिन बाद में जब देश भर के कवि-साहित्यकारों से डॉ त्रिवेदी को बधाइयां मिलने लगीं, तब उनके अनजाने में प्रकाशित होकर चहुंओर वितरित हो रही साप्ताहिकी का भेद खुला। यशस्वी कथा वाचक रामकिंकर, साहित्यकार विष्णु प्रभाकर, डॉ गोपालदास नीरज, रमानाथ अवस्थी, रवींद्रनाथ त्यागी, डॉ बरसाने लाल चतुर्वेदी, चिरंजीत, पद्मश्री बेकल उत्साही, राजेंद्र अवस्थी, वेदप्रताप वैदिक, रामधारी सिंह दिनकर आदि से उनके अत्यंत आत्मीय सम्बंध रहे।

सम्पन्न काव्य-परम्परा की अप्रतिम कड़ी

असीम शुक्ल

मेरे लिए मानव मूल्य सम्पन्न लिखने का अर्थ है, अपनी चेतना से काव्य के प्रति समर्पित रचनाधर्मिता की परम्परा को प्रणाम अर्थात स्व. गिरजा शंकर त्रिवेदी जैसे मनीषी के प्रति अनेकशः स्मृतियों के पारावार में निमग्न हो जाना। त्रिवेदी जी निरंतर विसंगतियों से दो-चार होते हुए भी सृजन की लौ मद्धिम न पड़ने के लिए संकल्पबद्ध रचनाकारों की पंक्ति में अग्रिम ही दिखाई देते रहे। मेरी पहली मुलाकात गुरुकुल विश्वविद्यालय के कवि सम्मेलन में होने पर यह अनुभव हुआ कि ऐसा विदग्ध काव्यशिल्पी ऐसा कुशल संचालक भी हो सकता है। यह सोचकर मैं उनके चिंतन परंपरा और स्मृति तथा वाक्य विन्यास में निरंतर डूबता-उतराता रहा। शाश्वत काव्य लेखन की संभावनाओं को रेखांकित करना तो कोई उनसे सीखता। श्रेष्ठ रचनाओं के लिए कथा एवं शिल्प के स्तर पर वे निरंतर संघर्ष करते हुए समृद्धि की दिशा में कार्य करते रहे। समय-समय पर वे कविता में बाजारवाद और कविता के मंच को कविता की दृष्टि से विपन्न करने वाले विदूषकों से भी संघर्षरत रहे।

मैंने उनका अनुवाद, अद्भुत शब्द विन्यास और चयन क्षमता को भी आकाशवाणी के एक कवि सम्मेलन में निकट से समझा व कुछ अपने को उन्हें सुनकर समृद्ध करने का प्रयास किया। त्रिवेदी जी ऐसे काव्यमनीषियों की श्रृंखला की महत्वपूर्ण कड़ी थे, जो कनिष्ठ से कनिष्ठतम मेरे जैसे नवोदित हस्ताक्षरों के लिए निरंतर प्रेरणा का स्रोत रहे। साहित्याकाश में जहाँ आत्मलीन चेहरे दिखाई देते हैं, वहीं त्रिवेदी जी नई पीढ़ी के दुधमुंहे रचनाकारों को एक सुखद रूप लेकर ही दिखाई

पड़ते रहे। मैंने उन्हें कई बार व्यथित होते हुए भी देखा, जब बलवीर सिंह, रंग, उमाकांत मालवीय, डॉ. शम्भूनाथ सिंह, ठाकुर प्रसाद सिंह जैसों के स्मरण क्षण चर्चा में उन्हें जीने पड़े। सृजन-यात्रा को देखते त्रिवेदी जी सदैव मुझे एक साधन संपन्न कवि, कलमकार, कविता के पुजारी-से लगे। सदा सादगी पसंद रहे। बनावटी आचरण करने वालों को तो वे आवश्यकतानुसार आईना दिखाते हुए भी दिखे।

एक बार पं. रमानाथ अवस्थी के आकाशवाणी के कमरे में उनसे गजल के व्याकरण पर चर्चा हुई तो उन्होंने बेबाकी से अपना मत रखा कि उर्दू व हिंदी के गजलकार व्याकरण की अपेक्षा उसके शास्त्र की चर्चा कर रहे हैं क्योंकि शास्त्रों को रटकर शास्त्री तो बन सकते हैं, किंतु कवि या शायर नहीं बन सकते। त्रिवेदी जी का स्पष्ट मत था कि आजकल जो गजलें कही जा रही हैं, वे सभी की सभी कार्बन राइटिंग जैसी लगती हैं। डॉ. त्रिवेदी निश्चित ही हमारे मानस पटल पर ऐसी स्मृतियों के रूप में विद्यमान रहेंगे, जो निष्काम कर्मयोग, उदात्त प्रेम भावना, सामाजिक सरोकारों के प्रति जागरूकता, श्रेष्ठ साहित्य सृजन के संकल्प आदि मानव मूल्यों की पर्याय हैं। उनका स्मरण जब जब होता है, तब तब मुझ जैसा सबसे पीछे की पंक्ति का हस्ताक्षर गहरी संवेदना में अपने को निमग्न पाता है। वे हमारे बीच से गये नहीं अपितु यह कह सकते हैं कि केवल व्यस्ततावश अनुपस्थित हुए हैं। वे राम तो नहीं राम कथा की नाईं भारतीय साहित्य व संस्कृति के आधार स्तंभ के रूप में आज भी हमारे बीच यशःकाय लिये विद्यमान हैं। सचमुच वे बड़े थे, इसलिए नहीं कि वे बहुत पढ़े लिखे थे, इसलिए भी नहीं कि वे बड़े कवि थे, हर तरह से संपन्न थे, बल्कि वे इसलिए बड़े थे कि मेरे जैसा अकिंचन, बदरंग व्यक्तित्व वाला अतिकनिष्ठ नवोदित रचनाकार उनका सान्निध्य पाकर अपने को बड़ा अनुभव करते हुए गर्व की अनुभूति पाता है।

स्व. गिरजा शंकर त्रिवेदी की काव्य के अंतर्गत भाषा संबंधी वैशिष्ट्य के अवगाहन की स्थिति में जिन निष्कर्षों पर हम पहुँचते हैं, उसे देखते हुए एक बात तो निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि स्व. त्रिवेदी जी के भाषा सामर्थ्य का गहरा संबंध यह सिद्ध करता है कि उन्हें सांसारिक प्रवृतियों का गहरा अनुभव था और यही नहीं उनमें अनुभव के संवेदनात्मक पक्ष को ग्रहण करने की अद्भुत क्षमता थी। अपने जीवनकाल में संवेदनात्मक प्रवृत्ति को निजी स्तर से कहीं ऊपर जाकर मानवीय स्तर पर शब्द शब्द और क्षण क्षण के लिए समर्पित करते रहे। भाषा और भाव बोध के संदर्भ में यदि देखा जाय तो डॉ. त्रिवेदी एक नये तेवर के साथ अपने सृजन के संसार में दिखाई देते रहे। स्व. त्रिवेदी के चिंतन फलक पर गहरे इतिहास बोध के साथ आधुनिकता का परिवेश वैश्विक स्तर पर उदात्तता से आवेष्ठित अनुभव किया गया। उनका समीक्षक सदैव साहित्य के संदर्भ में एक सान के पत्थर की तरह रहा है, जिसमें साहित्य की कोई भी विधा चेतना सापेक्ष त्वरा देखी जा सकती है। ऐसा मूर्धन्य सृजेता न जाने कब और किस काल को प्राप्त होगा, यह कहना समय, साहित्य और संस्कृति के प्रति कुछ जल्दबाजी होगी। समय की गति बहुत तीव्र है। समय के साथ चाहकर भी हम चल नहीं पाते, पर डॉ. त्रिवेदी जैसे व्यक्ति, व्यक्ति न होकर अपनी व आने वाली पीढ़ी के लिए संस्था जैसे सिद्ध ही नहीं होते अपितु काल की छाती पर अपने निशान छोड़ जाते हैं, जिनका लोग अनुसरण करते हैं।

विद्वता और आत्मीयता के पर्याय - सर्वेश अस्थाना : डॉ गिरिजा शंकर त्रिवेदी से मेरी पहली मुलाकात हरिद्वार के बीएचईएल के कविसम्मेलन में हुई थी, संभवतः 2001 या 2002 में। उस कविसम्मेलन का संचालन डॉ त्रिवेदी ही कर रहे थे। उनका व्यक्तित्व अत्यंत विद्वता पूर्ण था और व्यवहार अवधी मिठास से लबरेज। देश की कई भाषाओं के विद्वान त्रिवेदी जी से उस दिन मैंने परिहास में ही आग्रह किया कि जरा सा मलयालम बोल कर दिखाइए तो उन्होंने काव्यपाठ के वक़्त मुझे मलयालम बोल कर ही माइक पर आमंत्रित किया लेकिन मुझे तो मलयालम आती नहीं थी। मैं बैठा ही रहा, सो बोले- अब मैं इसका ट्रांसलेशन करूंगा तो वह व्यक्ति समझेगा कि मैं क्या कह रहा हूँ। फिर जब हिंदी बोले, तब मैं शमार्ता हुआ माइक पर आ गया। उस दिन इसी वजह से मैं खूब जमा भी।

नवोदित रचनाकारों से अनथक स्नेह - प्रो.विद्या सिंह : साहित्य मनीषी डॉ. गिरिजा शंकर त्रिवेदी एक कुशल सर्जक होने के साथ-साथ प्रथम कोटि के साहित्य मर्मज्ञ भी थे। व्यक्ति की पात्रता हो अथवा कृति की, उनकी पारखी नजरों से कुछ भी ओझल नहीं रह पाता था। अपने इन्हीं गुणों के कारण उन्होंने एक साहित्यिक परिवेश निर्मित किया। वह इस बात के लिए भी चिन्तित रहे कि युवा पीढ़ी को साहित्य से कैसे जोड़ा जाए। इसके लिए उन्होंने एक अनूठी पहल की। नये-पुराने तमाम रचनाकारों की कविताओं के अंश लेकर, उन्होंने अ से ज्ञ तक वर्णों सें आरंभ होने वाली रचनाओं का संकलन किया और 'साहित्यिक अन्त्याक्षरी', 'मानस अन्त्याक्षरी' तथा 'राष्ट्रभक्ति अन्त्याक्षरी' नाम से तीन संग्रह तैयार किए। महाकवि पंत की कविताओं का मंथन कर नवनीत रूप में जो सूक्तियां प्राप्त हुईं, उनका एक अलग संकलन 'महाकवि पंत की सूक्तियां' शीर्षक से तैयार किया।

दून के जनमानस पर अमिट छाप - डॉ एस फारुख : रजनीश त्रिवेदी से मिलकर उनके वालिद की याद ताजा हो जाती है। डॉ गिरिजाशंकर त्रिवेदी शहर के साहित्यकारों के प्रेरणा स्रोत थे। उनके द्वारा संचालित कवि-सम्मेलन मंचों की क्षतिपूर्ति असंभव है। उनका लहजा गंगा-जमुनी तहजीब का शाहकार था। देहरादून के जनमानस पर अपनी अमिट छाप छोड़ वह अमर हो गए।

साहित्यिक संवेदना के विविध गवाक्ष खोले - प्रो.मंजुला राणा : हिंदी नवगीत परंपरा के प्रमुख हस्ताक्षर डॉ गिरिजाशंकर त्रिवेदी ने अपनी लेखनी से साहित्यिक संवेदना के विविध गवाक्ष खोले हैं। 'ज्योतिरथ' और 'इंद्रालय' जैसे काव्य-संग्रह हिंदी साहित्य की अनुपम निधि हैं, जिनमें मानवीय मनोभावों के बहुरंगी पल्लवों को अनेक दृष्टियों के उपादान प्राप्त हैं। देहरादून जैसे रमणीय स्थान को अपनी कर्मभूमि बनाकर डॉ त्रिवेदी ने साहित्य की अनेक विधाओं को अपना प्रदेश दिया है। शब्द-साधक कवि ने गद्य को भी शतशः विस्तार दिया है। वे एक बेहतरीन लेखक, कवि, पत्रकार एवं मंच संचालक के साथ-साथ अंत्याक्षरी के सिद्धहस्त विद्वान थे।

गिरिजाशंकर त्रिवेदी के पांच गीत-गीतिकाएं

एक

शब्द हुए भरमाने को।
अर्थ हुए बहकाने को।

सरगम तक का पता नहीं
वे आए हैं गाने को।
घर में दाना एक नहीं
अम्मा चली भुनाने को।
जिनको कोई समझ नहीं
वे आतुर समझाने को।
तीरंदाज ताकता है
चूके हुए निशाने को।
जनम-जनम के भुक्खड़ करते
वादे हमे खिलाने को।
किसको फुर्सत इस युग में
पहचाने दीवाने को।

दो

माना यह तन नश्वर है
पर जब तक है सस्वर है

महल, दुमहलों से क्या कम
कच्चा मिट्टी का घर है।
राजा का मन चपरासी
सेवक का मन अफसर है।
गुमसुम-गुमसुम बैठा है
लगता कोई चक्कर है।
देखें कौन जीतता है
यह कांटे की टक्कर है
तू जिसके बल ऐंठ रहा
वह तो कब का जर्जर है।
दिल की बस्ती, बस्ती है
बाकी सब खंडहर है।
चढ़ी जवानी बीवी है
बढ़ा हौसला शौहर है
ग्रंथों, पंथों के कब्जे
गिरवी कब का ईश्वर है।

तीन

अर्जी हाजिर मेरी है।
आगे मर्जी तेरी है।

अपने-अपनों में बांटो,
जब तक रात अंधेरी है।
उतनी ही अफरा-तफरी
जितनी चाह घनेरी है।
जिसके पास रुपैया है
सत्ता उसकी चेरी है।
राम राज्य की बाते हैं
चलती हेराफेरी है।
जो भी धान यहां पर है
सब बाईस पसेरी है।
तू जिस पर फूला फिरता
अंत राख की ढेरी है।
कब से बैठा रक्खा है
अब काहे की देरी है।

बांझ मेरी सांझ

लटक आई है क्षितिज की अरगनी पर
धुंध डूबी सांझ।

अलविदा कहकर गया सूरज
बोलकर मीठा नमस्ते धूप
जो रहा उड़ता समूचे दिन
शोर के उस बाज ने
अपने समेटे पंख,
शंख जैसा चांद आकाशी करों में
हाशिए की टिप्पणी-सी
सड़क पर लंबी कतार
चमक आए कुछ सितारे
हर डगर ढोने लगी भीड़,
मुंह ढंके सोते रहे दिनभर
जगे वे रोशनी के बाल-बच्चे बल्व
उधर खिड़की एक शरमाई
इधर बहकी एक अंगडाई
यह लो, उतर आई साझं।

उम्र की संकरी गली में
थकी हारी सांस
सूखी कलम की स्याही कलम में
याद की अपरूप परियां
दर्द पहरेदार सिर पर
खो गई वह अंगूठी
कामना की शकुंतल प्रिय निशानी
यह अंधेरा, शाप दुवार्सा तपी का
एक जग की, एक मेरी सांझ
हाय कितनी बांझ मेरी सांझ।

छह ऋतुओं की चुनरी ओढ़े वसुधा गंधवती

धरती तन है, पवन प्राण है, पानी है जीवन।
पावनकारी पावक हलचल, रक्षक नील गगन।

छह ऋतुओं की चुनरी ओढ़े वसुधा गंधवती
शस्य-श्यामला, शांत उर्वरा, वरदा सरस्वती
हो न जाय विध्वंस सृष्टि का यज्ञ दक्षपुत्रों
अपमानित मत करो कि पृथ्वी है साक्षात सदी
हिला न दे भूगोल तुम्हारा यह आसुरी खनन।

नयी वधू सी सहमी-सकुची चलती मंद हवा
कभी उत्तरी, कभी दक्खिनी पछुवा औ पुरवा
इसमें गति है, इसमें लय है, इसमें स्वर-सरिता
परम पुरातन, यह अधुनातन, यह है पुनर्नवा
विषधर धुंआ, धूल ना कर दे इसके मलिन वसन।

हंसते हिमनद, गाते निर्झर, जल है गीत-गजल
धारा वेणी मुक्त, लहरियां हैं चितवन चंचल
पिया मिलन को सत्वर आतुर इठलाती नदियां
इनके रस को रस रहने दो, करो न हालाहल
यही धमनियां हैं धरती की, इनसे जग चेतन।

अग्नि ऊष्मा, अग्नि ऊर्जा, ज्योति और रक्षक
अग्नि कामना, अग्नि भावना, जप-तप अग्नि अथक
इससे करो सुगंधित संसृति और न यह भूलो
अग्नि विषैल उपजाती है रोगों के तक्षक
भड़की अग्नि न कर दे फिर से लंकापुरी दहन।

यह अग-जग का नीला अंबर, वसुधा का प्रियतम
यह विराट कल्पना, ज्योतिवीणा की स्वर-सरगम
छिन्न करो मत इसका जीवन-छद, क्षय हो अक्षय
शेष बचें कंकाल, धरे रह जायं सभी उपक्रम
चुक मत जाये सांस सृष्टि की, रुक न जाय धड़कन।
पंचतत्व निमार्ता- क्षिति-जल-पावक-पवन-गगन।

18 अप्रैल, रमई काका की पुण्यतिथि पर विशेष

अइसी कविता ते कौनु लाभ!

डा. रामविलास शर्मा लिखते हैं- रमई काका की गंभीर रचनाओं में एक विद्रोही किसान का उदात्त स्वर है, जो समाज में अपने महत्वपूर्ण स्थान को पहचानता रहा है और अधिकार पाने के लिए कटिबद्ध हो गया है।

अवधी के आभूषण चंद्रभूषण त्रिवेदी 'रमई काका' का बचपन काफी कष्ट में बीता पर उनका लालन-पालन इस तरह से हुआ कि ग्राम संस्कृति उनके जीवन का पर्याय बन गई। वह 27 वर्ष की उम्र में 1941 में लखनऊ आकाशवाणी में नियुक्त हुए और स्थानीय रूप से लखनऊ में बस गये। सेवानिवृत्ति के दो वर्ष बाद दो-दो वर्षों के लिए उनका सेवाकाल बढ़ाया भी गया। आकाशवाणी पर उन्होंने सन्तू दादा, चतुरी चाचा, बहिरे बाबा आदि की भूमिकाएँ निभाईं। उनको बहिरे बाबा के नाम से भी ख्याति मिली। बहिरे बाबा धारावाहिक ने तो प्रसारण का कीर्तिमान स्थापित कर दिया था। यह धारावाहिक 25 से भी अधिक वर्षों तक आकाशवाणी से प्रसारित होता रहा। यद्यपि काका स्थायी रूप लखनऊ में रहे पर उनका संपर्क गाँव से जीवन भर बना रहा। शहर में रहते हुए आपने अपने ग्रामीण मन को बचाए रखा। रमई काका का काव्य अवध के गाँव से बहुत गहराई से जुड़ा होने के कारण आकाशवाणी (पंचायत घर), दूरदर्शन और एच.एम.वी. के रिकार्डर के माध्यम से उनकी कविताएँ अवध अंचल में रच-बस गयीं। 'मौलवी' रमई काका की पहली उपलब्ध कविता है। यह कविता उन्होंने 'पडरी' के मिडिल स्कूल में पढ़ते हुए लिखी थी। इस कविता पर काका के अपने गुरु पं. गौरीशंकर जी से आशीर्वाद मिला था कि काका एक कवि के रूप में विख्यात होंगे। रमई काका हास्य-व्यंग्य कवि के रूप में काफी विख्यात रहे।

रमई काका वृद्धावस्था में ब्रांकाइटिस रोग से वे पीड़ित थे। अन्त में 1982 की फरवरी में इतने बीमार हो गये कि फिर सम्हल ही नहीं पाए और अंत में 18 अप्रैल 1982 को प्रातःकाल उनका निधन हो गया। काका मुख्यतः व्यंग्य कवि थे। उनकी 'हास्य के छींटे' संकलन में 'दो छींकें' शीर्षक से प्रकाशित एक लोकप्रिय व्यंग्य कविता है -

छींक मुझको भी आती है,
छींक उनको भी आती है,
हमारी, उनकी छींक में अंतर है
हमारी छींक साधारण है,
उनकी छींक में जादू मंतर है,
हमारी छींक छोटी नाक की है,
उनकी छीक बड़ी धाक की है,
हमारी छींक हवा में खप जाती है,
उनकी छींक अखबार में छप जाती है।

रमई काका के जीवन पर प्रकाश डालते हुए हिमांशु बाजपेयी लिखते हैं - अवधी भाषा के महत्वपूर्ण कवि-नाटककार चन्द्रभूषण त्रिवेदी उर्फ रमई काका पढ़ीस और वंशीधर शुक्ल के साथ अवधी की उस अमर 'त्रयी' का हिस्सा हैं, जिसकी रचनात्मकता ने तुलसी और जायसी की सृजन-भाषा अवधी को एक नई साहित्यिक समृद्धि प्रदान की। यूं अवधी की इस कद्दावर तिकड़ी के तीनों सदस्य बहुत लोकप्रिय रहे लेकिन सुनहरे दौर में आकाशवाणी लखनऊ के साथ सफल नाटककार और प्रस्तोता के बतौर लंबे जुड़ाव और अपने अद्वितीय हास्य-व्यंग्यबोध के चलते रमई काका की लोकप्रियता सचमुच अद्भुत और असाधारण रही है। रेडियो नाटकों का उनका हस्ताक्षर चरित्र 'बहिरे बाबा' तो इस कदर मशहूर रहा कि आज भी उत्तर भारत के पुराने लोगों में रमई काका का नाम भले ही सब न जानें लेकिन बहिरे बाबा सबको अब तक याद हैं। अपनी अफसानवी मकबूलियत को रमई काका ने अपने रचनाकर्मी सरोकारों और दायित्वबोध पर कभी हावी नहीं होने दिया। उनके नाटक और कविताएं अपने समय से मुठभेड़ का सशक्त माध्यम बनीं। उनकी भाषा में गजब की सादगी और अपनेपन की सौंधी-सी खुशबू है। अपने लोगों से अपनी भाषा में अपनी बात कहते हुए उन्होंने अपने समय के ज्वलंत सवालों को संबोधित किया। हालांकि उन्होंने खड़ी बोली में भी लिखा लेकिन उनकी पहचान हमेशा अवधी से जुड़ी रही। हास्य-व्यंग्य के अपने जाने पहचाने रंग में तो वे बेजोड़ रहे ही, उन्होंने दिल में उतर जानेवाली संजीदा कविताएं भी लिखीं। उस दौर में जब खड़ी बोली के कई बड़े साहित्यकार लोकभाषाओं को भाषा नहीं फकत बोली कहकर खड़ीबोली को उन पर तरजीह दे रहे थे और दूसरों से भी उसी में लिखने का आग्रह कर रहे थे, उस वक्त रमई काका अवधी में उत्कृष्ट लेखन करते हुए, अपने समय के जरूरी सवालों को उठाते हुए और अत्यधिक लोकप्रिय होते हुए ये सिद्ध कर रहे थे कि अवधी भाषा-साहित्य केवल रामचरितमानस और पद्मावत तक सीमित किसी गुजरी हुई दास्तान नहीं है, बल्कि ये एक ज़िन्दा कारवान-ए-सुखन है, जो अभी कई मंज़िलें तय करेगा।'

रमई काका नौकरी के लिए गांव छोड़ने के बाद जिंदगीभर लखनऊ में ही रहे लेकिन इसके बावजूद उनकी कविताओं में गांव और कृषि प्रधान संस्कृति की मौजूदगी हमेशा बनी रही। गांव का उनका प्रकृति चित्रण अनूठा है लेकिन सबसे महत्वपूर्ण बात ये है कि वे गांव को किसी आउटसाइडर यानी शहरवाले की नजर से नहीं बल्कि एक इनसाइडर के बतौर देखते और बयान करते हैं। डा. रामविलास शर्मा लिखते हैं- 'उनकी गंभीर रचनाओं में एक विद्रोही किसान का उदात्त स्वर है, जो समाज में अपने महत्वपूर्ण स्थान को पहचानता रहा है और अधिकार पाने के लिए कटिबद्ध हो गया है।' लोकभाषाओं को पिछड़ेपन की निशानी और खुद को प्रगतिशील माननेवालों को यह जानना बहुत जरूरी है कि रमई काका की अवधी में लिखी गईं ग्राम्य जीवन पर आधारित कविताओं में चौंकानेवाली प्रगतिशीलता और विद्रोह का स्वर मिलता है। उनकी 'हम कहा बड़ा ध्वाखा होइगा' शीर्षक कविता में जरा उनके ठेठ शब्दों के रंग देखिए -

हम गयन याक दिन लखनउवै,
कक्कू संजोगु अइस परिगा।
पहिलेहे पहिल हम सहरु दीख,
सो कहूँ - कहूँ ध्वाखा होइगा।

जब गएँ नुमाइस द्याखै हम, जंह कक्कू भारी रहै भीर
दुई तोला चारि रुपइया कै, हम बेसहा सोने कै जंजीर
लखि भईं घरैतिन गलगल बहु,
मुल चारि दिनन मा रंग बदला
उन कहा कि पीतरि लै आयौ,
हम कहा बड़ा ध्वाखा होइगा।

म्वाछन का कीन्हें सफाचट्ट,
मुंह पौडर औ सिर केस बड़े
तहमद पहिरे कम्बल ओढ़े, बाबू जी याकै रहैं खड़े
हम कहा मेम साहेब सलाम, उई बोले चुप बे डैमफूल
'मैं मेम नहीं हूँ साहेब हूँ ',
हम कहा फिरिउ ध्वाखा होइगा।

हम गयन अमीनाबादै जब,
कुछ कपड़ा लेय बजाजा मा
माटी कै सुघर महरिया असि,
जहं खड़ी रहै दरवाजा मा
समझा दूकान कै यह मलकिन सो भाव ताव पूछै लागेन
याकै बोले यह मूरति है, हम कहा बड़ा ध्वाखा होइगा।

धँसि गयन दुकानैं दीख जहाँ, मेहरेऊ याकै रहैं खड़ी
मुंहु पौडर पोते उजर - उजर, औ पहिरे सारी सुघर बड़ी
हम जाना मूरति माटी कै, सो सारी पर जब हाथ धरा
उइ झझकि भकुरि खउख्वाय उठीं,
हम कहा फिरिव ध्वाखा होइगा।

रमई काका दशकों तक पूर्वांचल के कवि सम्मेलनों में धूम मचाते रहे। मंचों से उनकी ई छीछालेदर द्याखौ तौ, नैनीताल, कचेहरी, अंधकार के राजा, नाजुक बरखा, बुढ़ऊ का बियाहु आदि कविताओं को अपार प्रसिद्धि मिली। उनकी कविताओं का पहला संकलन 'बौछार' 1944 में प्रकाशित हुआ इसके बाद भिनसार, नेताजी, फुहार, गुलछर्रा, हरपाती तरवारि, हास्य के छींटे और माटी के बोल आदि काव्य संकलन भी प्रकाशित हुए।

चित्रलेखा वर्मा बताती हैं कि 'रमई काका' के पिता पं. वृंदावन त्रिवेदी फौज में नौकरी करते थे तथा प्रथम विश्व युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए। उस समय काका केवल एक वर्ष के थे। काका की आत्मकथा से पता चलता है कि पिता की मृत्यु के बाद माँ गंगा देवी को सरकार से कुल तीन सौ रूपए मिलते थे जिनसे वे अपने परिवार को चलाती थीं। इस तरह उनका बचपन संकटों और कष्टों में बीता। पर उनका लालन-पालन इस तरह से हुआ कि ग्राम संस्कृति काका के जीवन का पर्याय बन गयी क्योंकि उनकी प्राथमिक शिक्षा ग्रामीण वातावरण में हुई थी। हाई स्कूल की परीक्षा अटल बिहारी स्कूल से उत्तीर्ण की। इसके पश्चात आपने नियोजन विभाग में निरीक्षक का पद सम्हाला। निरीक्षक पद का प्रशिक्षण लेने के लिए वे मसौधा-फैजाबाद में कुछ समय रहे। अपने प्रशिक्षण काल में भी आपने अपनी प्रतिभा से प्रशिक्षकों को प्रभावित किया। यहाँ उन्होंने कई कविताएँ लिखीं तथा कई एकांकियों का मंचन भी किया। 'गड़बड़ स्कूल' एकांकी ने यहाँ के लोगों का बहुत मनोरंजन किया। यहाँ के बाद उनकी नियुक्ति उन्नाव के बोधापुर केंद्र में हो गयी। यहाँ इन्होंने बहुत मेहनत की। फलतः इनके केंद्र को संपूर्ण लखनऊ कमिश्नरी में प्रथम स्थान मिला। उन्हें गवर्नर की 'सर हेनरी हेग शील्ड' प्रदान की गयी। इस केंद्र पर काम करते हुए काका ने एक बैलगाड़ी बनायी जिसमें बालवियरिंग का प्रयोग हुआ था तथा ढलान से उतरते समय उसमें ब्रेक का भी प्रयोग किया जा सकता था।

यद्यपि आपने शास्त्रीय एवं सुगम संगीत का विधिवत प्रशिक्षण नहीं लिया था परंतु अपनी प्रतिभा के ही बल पर शास्त्रीय और सुगम संगीत का ज्ञान प्राप्त किया। लखनऊ आकाशवाणी से 1977 में सेवानिवृत्त होने के दो वर्ष बाद दो-दो वर्षों के लिए उनका सेवाकाल बढ़ाया भी गया। सेवानिवृत्ति के बाद भी वे निष्क्रिय नहीं हुए और आकाशवाणी, दूरदर्शन, समाचार पत्र, पत्रिकाओं और कवि सम्मेलनों से जुड़े रहे। आकाशवाणी पर आपने अनेक भूमिकाएँ भी निभायीं। बहिरे बाबा के अलावा वह सन्तू दादा, चतुरी चाचा आदि की भी भूमिकाओं में लोगों के बीच मुखर रहे। यद्यपि काका स्थायी रूप लखनऊ में रहे पर उनका संपर्क गाँव से जीवन भर बना रहा। शहर में रहते हुए आपने अपने ग्रामीण मन को बचाए रखा। रमई काका का काव्य अवध के गाँव से बहुत गहराई से जुड़ा होने के कारण आकाशवाणी (पंचायत घर), दूरदर्शन और एच.एम.वी. के रिकार्डर के माध्यम से उनकी कविताएँ अवध अंचल में रच-बस गयीं। 'मौलवी' रमई काका की पहली उपलब्ध कविता है। यह कविता उन्होंने 'पडरी' के मिडिल स्कूल में पढ़ते हुए लिखी थी। इस कविता पर काका के अपने गुरु पं. गौरीशंकर जी से आशीर्वाद मिला था कि काका एक कवि के रूप में विख्यात होंगे। रमई काका वृद्धावस्था में ब्रांकाइटिस रोग से वे पीड़ित थे। अन्त में 1982 की फरवरी में इतने बीमार हो गये कि फिर सम्हल ही नहीं पाए और अंत में 18 अप्रैल 1982 को प्रातःकाल उनका निधन हो गया। रमई काका को हिन्दी साहित्य में उत्कृष्ट योगदान देने के लिए ''उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान'' की ओर से सम्मान किया गया। रमई काका की एक और 'धरती हमारि ! धरती हमारि !' शीर्षक लोकप्रिय कविता है -

धरती हमारि ! धरती हमारि !
है धरती परती गउवन कै औ ख्यातन कै धरती हमारि।

हम अपनी छाती के बल से धरती मा फारु चलाइत है,
माटी के नान्हें कन - कन मा , हमही सोना उपजाइत है,
अपने लोनखरे पसीना ते , रेती मा ख्यात बनावा हम,
मुरदा माटी जिन्दा होइगै, जहँ लोहखर अपन छुवावा हम,
कँकरील उसर बीजर परती, धरती भुड़गरि नींबरि जरजरि,
बसि हमरे पौरख के बल ते, होइगै हरियरि दनगरि बलगरि,
हम तरक सहित स्याया सिरजा , सो धरती है हमका पियारि

धरती हमारि ! धरती हमारि !
हमरे तरवन कै खाल घिसी , औ रकत पसीना एकु कीन,
धरती मइया की सेवा मा , हम तपसी का अस भेसु कीन,
है सहित ताप बड़ बूँद घात , परचंड लूक कट - कट सरदी,
रोंवन - रोंवन मा रमतु रोजु , चंदनु अस धरती कै गरदी,
ई धरती का जोते - जोते , केतने बैलन के खुर घिसिगे,
निखवखि, फरुहा, फारा, खुरपी, ई माटी मा हैं घुलि मिलिगे,
अपने चरनन कै धूरि जहाँ , बाबा दादा धरिगे सम्हारि ...
धरती हमारि ! धरती हमारि !

हम हन धरती के बरदानी , जहँ मूंठी भरि छाड़ित बेसार,
भरि जात कोंछ मा धरती के, अनगिनत परानिन के अहार,
ई हमरी मूंठी के दाना , ढ्यालन की छाती फारि - फारि,
हैं कचकचाय के निकरि परत, लखि पौरुख बल फुर्ती हमारि,

हमरे अनडिग पैसरम के , हैं साक्षी सूरज औ अकास,
परचंड अगिन जी बरसायनि, हमपर दुपहर मा जेठ मास,
ई हैं रनख्यात जिन्दगी के , जिन मा जीतेन हम हारि-हारि ...
धरती हमारि ! धरती हमारि !

रमई काका की एक कविता है- 'बुढ़ऊ का बिवाह'। किसी तरीके से बुढ़ऊ को शादी के लिये तैयार किया जाता है। बारात जाती है किन्तु रतौंधी सारा मजा किरकिरा कर देती है। वर देवता अपनी आंखों से दिखाई न देने के कारण दीवार की तरफ मुँह करके खाने पर बैठते हैं। तब सासु जी उनसे कहती हैं ('बुढ़ऊ का विवाह' की कुछ पंक्तियां)-

जब पचपन के घरघाट भएन,
तब देखुआ आये बड़े बड़े।
हम शादी ते इनकार कीन,
सब का लौटारा खड़े खड़े।
सुखदीन दुबे, चिथरू चौबे,
तिरबेनी आये धुन्नर जी।
जिन बड़ेन बड़ेन का मात किहिन
बड़कए अवस्थी खुन्नर जी....

बुद्धिनाथ मिश्र का गद्य भी सुरीला - राज्यपाल

विष्णुपुर (कलकत्ता)। प.बंगाल के राज्यपाल केशरी नाथ त्रिपाठी ने पिछले दिनो यहां माउन्ट लिटरा स्कूल प्रांगण में आयोजित एक भव्य समारोह में कहा कि बुद्धिनाथ मिश्र सिर से पाँव तक गीतकार हैं। यह अनुभव इनके मधुर गीतों को पिछली आधी सदी से सुनते हुए हमें होता रहा है। इनकी प्रथम गद्यकृति 'निरख सखी ये खंजन आए' को पढ़कर यह अनुभूति और गहरी हो गयी है कि वह महाकवि विद्यापति के खाँटी वारिस हैं। इस संग्रह के लेखों का गद्य भी गीत की तरह सुरीला है।

राज्यपाल ने कहा कि एक गीत-कवि के रूप में बुद्धिनाथ मिश्र अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर चर्चित हैं। इनके गीतों के प्रेमी सीमा के पार भी कम नहीं है। इनका एक गीत 'जाल फेंक रे मछेरे' तो पिछली दो पीढ़ियों का सर्वप्रिय गीत रहा है लेकिन एक स्तंभकार के रूप में विभिन्न दैनिक पत्रों में छपे इनके लेख अपनी साहित्यिक सुरभि के कारण पाठकों को विशेष आकृष्ट करते रहे हैं। 'निरख सखी ये खंजन आये' के आलेख उन्हीं स्तम्भों से चुने गए आलेख हैं, जिनमें विषय की विविधता के साथ-साथ प्रस्तुति की रोचकता अद्भुत है। यह खुशी और गौरव की बात है कि विद्वान लेखक ने यह पुस्तक मुझे समर्पित की है।

डॉ बुद्धिनाथ मिश्र ने राज्यपाल के प्रति आभार व्यक्त करते हुए कहा कि मेरा स्तम्भ लेखन 1971 में 'दैनिक आज' के संपादन काल में ही प्रारम्भ हो गया था। कुछ वर्ष पूर्व 'प्रभात खबर' के संपादक हरिवंश के आग्रह पर मैं साहित्य-संस्कृति-कला से जुड़े सामयिक विषयों पर लिखने लगा, जिसे उन्होंने सम्मान के साथ हर शनिवार को सम्पादकीय पृष्ठ पर स्थान दिया। प्रतिदिन आनेवाली सैकड़ों पाठकों की प्रतिक्रियाओं ने मुझे वह आनंद दिया, जो कवि सम्मेलनों की तालियों में अनुपलब्ध था। इससे उत्साहित होकर मैं 'सन्मार्ग', 'हिंदुस्तान', 'दैनिक जागरण' आदि पत्रों में भी लिखने लगा। किसी भी पार्टी पॉलिटिक्स से ऊपर उठकर लिखनेवाले साहित्यकार को भौतिक लाभ भले न हो मगर आध्यात्मिक सुख जरूर मिलता है। सामान्यतः दैनिक पत्रों के सम्पादकीय पृष्ठ पर राजनीति, अर्थनीति आदि से सम्बंधित आलेख होते हैं। यह पहला उदाहरण है जिसमें दैनिक पत्र ने साहित्यिक विषयों को नियमित स्तम्भ का स्थान दिया। मुझे खेद है कि वर्धा विश्वविद्यालय की प्रतिबद्धताओं के कारण मेरा स्तम्भ लेखन बाधित हो गया मगर अब फिर इस ओर मन ललक रहा है। इस अवसर पर टाटा समूह के वाईस प्रसिडेंट पीयूष गुप्ता और माउन्ट लिटरा स्कूल समूह के क्षेत्रीय समन्वयक मुखोपध्याय ने भी शिक्षा-संस्कृति के सम्बन्ध में अपने विचार रखे।

राहुल ने यात्रा-साहित्य को समृद्ध किया - डॉ सूर्य प्रसाद दीक्षित

पटना (बिहार)। यहां पिछले दिनो बिहार हिंदी साहित्य सम्मेलन के दो दिवसीय 39वाँ महाधिवेशन में अनेक विद्वानों और पत्रकारों को बिहार की साहित्यिक विभूतियों के नाम से नामित अलंकरणों से सम्मानित किया गया। समापन समारोह के मुख्य अतिथि न्यायमूर्ति राजेंद्र प्रसाद ने इस महाधिवेशन को एक बड़ी साहित्यिक उपलब्धि बताते हुए कहा कि, इससे बिहार प्रांत के साहित्यकारों और हिंदी-प्रेमियों को शक्ति और ऊर्जा मिलेगी।

उन्होंने कहा कि शुद्ध विचारों के संरक्षण से ही भाषा का विकास होता है। इसका संबंध मन से है और मन से ही सच्ची अभिव्यक्ति उपजती है। भारतीय रिजर्व बैंक के बिहार-झारखंड प्रक्षेत्र के क्षेत्रीय निदेशक नेलन प्रकाश तोपनो ने कहा कि साहित्य समाज की सांस्कृतिक धरोहर होता है, जिससे मनुष्य अपनी संस्कृति को अक्षुण रख सकता है। सम्मेलन अध्यक्ष डा अनिल सुलभ

ने कहा कि यह अधिवेशन साहित्य सम्मेलन के आगामी शताब्दी-वर्ष के आयोजन का पूर्वाभ्यास था। इसकी विशाल सफलता ने यह विशास दिलाया है कि, शताब्दी-वर्ष का आयोजन व्यापक रूप से सफल होगा।

इस अवसर पर डॉ सूर्य प्रसाद दीक्षित, विश्वविद्यालय सेवा आयोग के पूर्व अध्यक्ष डा शशि शेखर तिवारी, मगध विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति मेजर बलबीर सिंह 'भसीन', सम्मेलन के उपाध्यक्ष नृपेंद्र नाथ गुप्त, डा शंकर प्रसाद समेत बड़ी संख्या में साहित्य सेवी उपस्थित थे। इस अवसर पर सम्मेलन की पत्रिका 'सम्मेलन साहित्य' के महाधिवेशन विशेषांक का लोकार्पण भी किया गया।

डॉ सूर्य प्रसाद दीक्षित ने कहा कि भाषा की व्युत्पत्ति के अद्वीतीय विद्वान थे महापंडित राहुल सांकृत्यान। उन्होंने अपनी यात्राओं से 'यात्रा-साहित्य' को समृद्ध किया। साहित्य में यात्रा-साहित्य' के वे जनक थे। उन्हें 36 भाषाओं का ज्ञान था और उन सब में वे अधिकार पूर्वक लिख सकते थे। उनके डेढ़ सौ प्रकाशित ग्रंथ हैं। उनके प्रकाशित ग्रंथों के कुल पृष्ठों की संख्या 15 हजार से अधिक है। वे सिद्ध-साहित्य के महान खोजी थे, जिन्होंने सिद्ध किया किया कि हिंदी का इतिहास 12वीं सदी से नहीं बल्कि 6वीं सदी से है, जब 'सराहापा' संत साहित्य प्रकाश में आया। उन्होंने सिद्ध-संतों के 47 संत-कवियों के साहित्य की खोज की थी। वे साहित्य-संसार के अद्भुत व्यक्तित्व थे।

प्रो अमरनाथ सिन्हा ने कहा कि राहुल जी ने अपने जीवन के हरेक पहलू की यात्रा की। वे केवल भूमि-नापने वाले यात्री नहीं थे। उन्होंने अनेक नामों से जाने जाने के कारण 'नाम' की भी यात्रा की। विभिन्न विचारों से प्रभावित रहे, और इस प्रकार 'विचारों की यात्रा' की। भाषा और साहित्य की की गई उनकी यात्रा साहित्य-संसार की थाती है। पटना विश्व विद्यालय के कुलपति प्रो रास बिहारी प्रसाद सिंह, विद्वान साहित्यकार डा शिवदास पांडेय, डा विनोद कुमार मंगलम तथा सम्मेलन के उपाध्यक्ष पं शिवदत मिश्र ने भी अपने विचार व्यक्त किए।

बौद्धिक विकास का शंखनाद है व्यंग्य - प्रेम जनमेजय

नई दिल्ली। यहां पिछले दिनो दिल्ली विश्वविद्यालय में नव उन्नयन साहित्यिक सोसाइटी की ओर से चार सत्रों में हिन्दी भाषा पर केंद्रित एक दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसका विषय था 'हिन्दी साहित्य और मानव मूल्य'। सत्र की शुरूआत रामचरितमानस के पद गायन से हुई। प्रो. सूर्य प्रसाद दीक्षित ने कहा कि आदिकाल के चरित काव्यों में भी मूल्यों की प्रतिष्ठा हुई थी परंतु भक्तिकाल ने मूल्यों को जीवन में स्थापित किया। प्रसिद्ध व्यंग्यकार प्रेम जनमेजय ने कहा कि हिंदी साहित्य में व्यंग्य विधा मनुष्य की बौद्धिक चेतना के विकास का शंखनाद है।

प्रो. दीक्षित ने कहा कि प्रेम भक्ति और मधुरोपासना के अनेक उदाहरण हिन्दी साहित्य में भरे पड़े हैं। आज जिस स्त्री अस्मिता की बात की जा रही है, हिन्दी साहित्य के आरंभ से पूर्व में ही गौरी के पूजा के बिना कार्यक्रम की शुरूआत नहीं की जाती थी। आज हमारे समाज में दलित वर्ग-भेद मौजूद है परंतु यह हमारे साहित्य में कभी भी मूल्य के रूप में मौजूद नहीं रहा है। आज हमारे साहित्य व समाज में व्यक्तिवाद बढ़ता हुआ दिखाई देता है परंतु यह व्यक्तिवाद हमारे यहाँ कभी मूल्य के रूप में स्थापित नहीं रहा।

गोष्ठी में डॉ राकेश शर्मा ने तुलसीदास और जयशंकर प्रसाद के साहित्य को रेखांकित करते

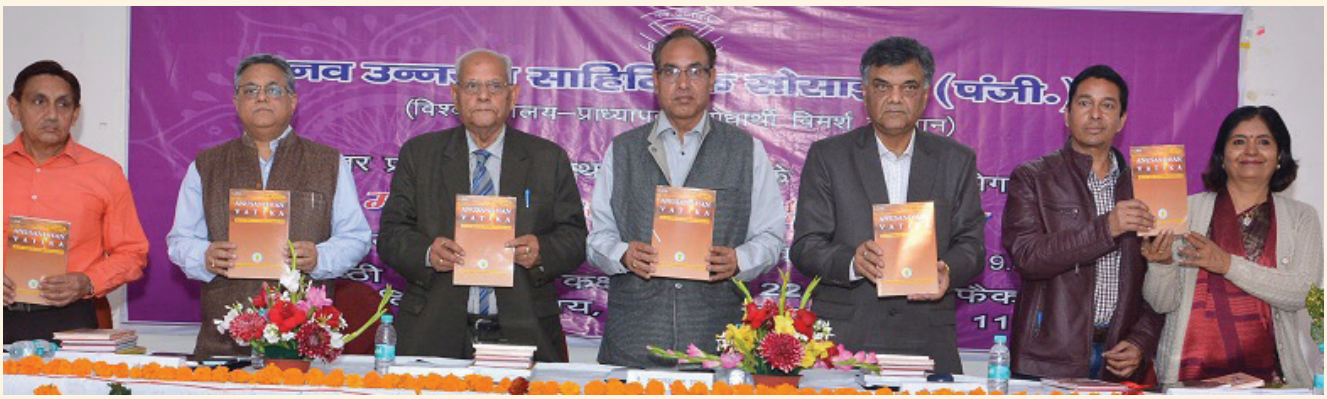

हुए लोकमंगल के मूल्यों पर प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि पिछले कुछ समय से इन मूल्यों में ह्रास देखा जा रहा है। डॉ राजनारायण शुक्ल ने कहा कि भारत के ऋषिझमुनियों, धर्मचार्यों एवं साहित्यकारों ने मानव मूल्यों को स्थापित करने पर जोर दिया। प्रो. मोहन ने कहा कि प्रत्येक युग का साहित्य नएझनए मूल्य लेकर आता है। शाश्वत मूल्यों के बाद भी भक्ति काल का साहित्य नैतिक मूल्यों की स्थापना करता है। तुलसी में लोक मयार्दा, मीरा में राजसत्ता का विरोध और मन की बात को प्रमुखता दी गई। हिन्दी साहित्य की सर्जनात्मकता ने मनुष्य को ऊपर ले जाने की पर्याप्त और सफल कोशिश की है। अंत में प्रो. पूरन चंद टंडन ने कहा कि हमारे मूल्यों के मूल में परिवर्तन नहीं हुआ है। आशान्वित रहना और परिश्रम करना हमारा मूल्य रहा है, जिसे हम पालन करते रहेंगे।

श्रीमती प्रेम सिंह ने कहा कि दादी-नानी की कहानियाँ कभी खत्म नहीं होनी चाहिए। संस्कृतियों के बदलने से मूल्य बदलते नहीं अपितु उनका रूपान्तरण होता है। भूमंडलीकरण के दौर में वृद्धों और बच्चों के साथ अन्याय ज्यादा बढ़ गया है। डॉ प्रेम जनमेजय ने कहा कि व्यंग्य हिन्दी की विधा है भी या नहीं, अभी इस पर विवाद बरकरार है। व्यंग्य मनुष्य की चेतना के बौद्धिक विकास का शंखनाद है। उन्होंने शरद जोशी, हरिशंकर परसाई के व्यंग्यों के अलावा 'राग दरबारी', 'ध्रुवस्वामिनी' आदि का उल्लेख करते हुए व्यंग्य विधा को चीरा लगाने वाले चिकित्सक की संज्ञा दी। इसके अलावा प्रो. करुणाशंकर उपाध्याय, डॉ जयप्रकाश, डॉ राम शरण गौड़, दिल्ली विश्वविद्यालय टीचर्स एशोसिएसन के संयुक्त सचिव डॉ आलोक रंजन पाण्डेय, डॉ कुमुद शर्मा, डॉ दिनेश चन्द्र दीक्षित, डॉ प्रदीप, डॉ जगदेव आदि ने भी सम्बोधित किया। इससे पूर्व सोसाइटी के अध्यक्ष प्रो. पूरन चंद टंडन नेअथितियों का स्वागत करने के साथ ही 'नव उन्नयन साहित्यिक सोसाइटी' के संक्षिप्त इतिहास पर प्रकाश डाला। सोसाइटी की महासचिव डॉ विनीता कुमारी एवं डॉ सुनील तिवारी ने कार्यक्रम का कुशल संचालन किया। डॉ तृप्ता ने धन्यवाद ज्ञापन किया।

डॉ ओम नागर के सृजन में राजस्थानी माटी की खुशबू

बारां (राजस्थान)। यहां एसएस इंटरनेशनल स्कूल में पिछले दिनो युवा कवि डॉ. ओम नागर की कृतियों पर सृजन-संवाद एवं सम्मान समारोह का आयोजन किया गया, जिसमें वक्ताओं ने कहा कि जिस जमीन पर शब्दों का सम्मान हो, वहाँ के सरस्वती पुत्र उस मिट्टी का नाम रोशन करते हैं। कवि नागर ने अपने सृजनकर्म से बने बनाएं सांचे को तोड़कर साहित्य की नई जमीन तैयार की है।

वागर्थ परिषद एवं प्राइवेट स्कूल एसोसिएशन के तत्वावधान में आयोजित समारोह में साहित्य अकादमी दिल्ली एवं भारतीय ज्ञानपीठ से पुरस्कृत कवि डॉ. ओम नागर की कृतियों पर डॉ. जितेन्द्र कुमार सोनी ने कहा कि नागर ने अपनी रचनाओं के माध्यम से मनुष्य के संवेदनशील पक्ष को पाठकों के सामने रखते हैं। गाँव की मिट्टी, खेत-खलिहान और वहाँ के संघर्षपूर्ण लोकजीवन की पीड़ाओं और विडम्बनाओं को उन्होंने अपने साहित्य में रेखांकित किया है।

डॉ. विवेक मिश्र ने कहा कि नागर के संग्रह में कविता के व्याकरण से बड़ी चिन्ता जिन्दगी की है। सत्येन्द्र वर्मा ने कहा कि उनकी रचनाओं में तत्सम के साथ देशज शब्दों का बेहतरीन प्रयोग हिंदी को समृद्ध करता है। डॉ. नन्दकिशोर महावर ने कहा कि उनका सृजन गांव-कस्बों के अन्तरंग जीवन का कोलाज है। अश्विनी त्रिपाठी ने कहा कि नागर

ने आम जन-जीवन की पीड़ाओं को उद्घाटित किया है। अरविन्द सोरल ने कहा कि डॉ. नागर ने राजस्थानी में भी बेहतरीन सृजन किया है। प्रद्युम्न वर्मा ने कहा कि कविता ऐसी लिखी जानी चाहिए, जो आम जन के लिए भी बोधगम्य हो। ओम की कविताओं में सहज रूप से बड़ी बातें कही गई हैं। उनमें सिर्फ नारे या प्रलाप नहीं।

इस अवसर पर सम्मानित कवियों ने अपनी रचनाओं का पाठ भी किया। प्राइवेट स्कूल एसोसिएशन की ओर से डॉ. ओम नागर, डॉ. जितेन्द्र कुमार सोनी तथा अतिरिक्त जिला शिक्षा अधिकारी प्रह्लाद राठौर का अभिनन्दन किया गया। कार्यक्रम में हरि अग्रवाल, बृज भूषण, ब्रजेश मयंक सोलंकी, जगदीश सोनी, शिव जोशी, वरुणेश, हेमराज बंसल, हरिमोहन बंसल आदि की उपस्थिति उल्लेखनीय रहे। कार्यक्रम का संचालन जितेन्द्र शर्मा पम्मी ने किया तथा अन्त में वागर्थ परिषद् की ओर से डॉ. कौशल तिवारी ने धन्यवाद ज्ञापित किया।

प्रेमचंद और चार्ल्स डिकिन का साहित्य आज भी लोकप्रिय

मुजफ्फरनगर (उ.प्र.)। चौधरी चरणसिंह यूनिवर्सिटी के कुलपति डॉ एमके तनेजा ने कहा कि संवेदनाओं से जुड़ा साहित्य ही दीर्घकाल तक अपनी छाप छोड़ता है। जैन कन्या पाठशाला पीजी कॉलेज में हिंदी, संस्कृत एवं अंग्रेजी विभाग के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित सेमिनार में उन्होंने कहा कि साहित्य स्वांत सुखाय के लिए नहीं मानव कल्याण को समर्पित होता है।

सेमिनार का विषय था 'साहित्य : मानवीय संवेदनाओं की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है'। राष्ट्रीय संगोष्ठी में कुलपति ने कहा कि साहित्य संपूर्ण मानवता की समस्याओं का हल प्रस्तुत करता है। दीर्घकाल तक वही साहित्य चलता है, जो समाज की समस्याओं को रखते हुए उनका निराकरण देता है। मेरठ में हजारों जासूसी उपन्यास छपे पर किसी का भी दूसरा एडिशन प्रकाशित नहीं हुआ। प्रेमचंद और इंग्लैंड के चार्ल्स डिकिन के साहित्य की आज भी बराबर डिमांड है। इनके प्रकाशन लगातार छप रहे हैं। साहित्य का दीर्घकालिक महत्व है। रामचरितमानस हमें समाज में हमारी जिम्मेदारी बताती है। खोज में सामने आया है कि हर चौपाई में विज्ञान की व्याख्या है।

उन्होंने छात्राओं से कहा कि वह अपनी कल्पनाशीलता को बढ़ाएं। लिखने के लिए समझ विकसित करें। एसडी कॉलेज संस्कृत विभाग के पूर्व अध्यक्ष डॉ उमाकांत शुक्ल ने कहा कि संस्कृत में साहित्य रस प्रधान है। भाव पर अधिक जोर दिया गया है। तकनीकी युग में संवेदनाओं का क्षरण हुआ है।

गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार के अंग्रेजी विभागाध्यक्ष प्रोफेसर श्रवण कुमार शर्मा ने कहा कि बिना संवेदनाओं के साहित्य की कल्पना ही व्यर्थ है। आईआईटी रुड़की से आए पशुपति झा ने कहा कि मानवीय संवेदनाओं को उकेरने वाला साहित्य ही आम जनमानस को प्रभावित करता है।

प्रेमचंद पर शोध कर रहे साहित्यकार डॉ प्रदीप कुमार जैन ने कहा कि साहित्य में प्रेमचंद की रचनाएं इसलिए अमर हैं कि उन्होंने आम आदमी की पीड़ा, उसके सुख-दुख को अपने साहित्य में स्थान दिया। निर्मला, गोदान, कर्मभूमि, रंगभूमि उनकी अमर रचनाएं हैं। विश्वविद्यालय की पूर्व विभागाध्यक्ष मनोरमा त्रिखा ने कहा कि सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार ही साहित्य सृजन होता है, लेकिन संवेदनाएं सर्वोपरि होती हैं।

एसडी डिग्री कॉलेज हिंदी विभाग के अध्यक्ष डॉ विश्वम्भर पांडेय ने कहा कि साहित्य समाज का प्रतिबिंब है, समाज का मार्ग दर्शक और समाज का लेखा जोखा है। साहित्य और समाज का

संबंध मानव शरीर और आत्मा की भांति ही है। शरीर तो एक दिन नष्ट हो सकता है, कोई भी राष्ट्र नष्ट हो सकता है, किंतु आत्मा रूपी साहित्य अजर और अमर है।

संस्कृत विभाग के पूर्व अध्यक्ष डॉ जयकुमार जैन, एमएमएच कॉलेज गाजियाबाद के हिंदी विभाग से आये डॉ कान्तिबोध, प्रोफेसर जेपी सविता, डॉ अलका बंसल ने साहित्य को समाज का दर्पण बताया। इससे पूर्व प्राचार्य डॉ सीमा जैन ने कुलपति डॉ एमके तनेजा, प्रबंध समिति के अध्यक्ष राजेश जैन, नरेंद्र जैन, देवेंद्र जैन, संजय जैन आदि का स्वागत किया। शुभारंभ मोनिका ने सरस्वती वंदना से किया।

संचालन डॉ पूनम भारद्वाज ने किया। कॉलेज की पत्रिका का कुलपति सहित सभी अतिथियों ने विमोचन किया। आयोजन में डॉ रीता गर्ग, डॉ पूनम भारद्वाज, डॉ रीतू मित्तल, डॉ अंजली शर्मा, डॉ सीता, डॉ वर्चसा सैनी, डॉ निशा गुप्ता, नीता भटनागर, डॉ वंदना वर्मा, डॉ संतोष कुमारी, सोनाली सिंह, प्रतिमा शर्मा, डॉ दुष्यंत, डॉ अमरदीप, डॉ पल्लवी, डॉ अरविन्द, बीना मित्तल, रिचा जैन, पूर्णिमा, पार्वती, डॉ छाया, अंशिका, रीमा, सोनम, आरती, अंजू त्यागी, हिमांशु, मोनिका, अर्चना, निधी, सृष्टि आदि का सहयोग रहा।

मुक्तिबोध एक बेचैन आत्मान्वेषण के कवि - डॉ. सत्यकाम

दरभंगा (बिहार)। ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय में पिछले दिनो मुक्तिबोध-त्रिलोचन जन्मशती समारोह का उद्घाटन करते हुए कुलपति डॉ. सुरेंद्र कुमार सिंह ने कहा कि ये दोनों कवि एक खास विचारधारा के कवि हैं, पर इस बात में कोई संदेह नहीं कि उनकी कविताएं महत्त्वपूर्ण हैं। विशिष्ट अतिथि कुलसचिव मुस्तफा कमाल अंसारी ने 1917 के ऐतिहासिक महत्त्व को रेखांकित किया, जो रूसी क्रांति और मुक्तिबोध-त्रिलोचन का जन्मवर्ष रहा है।

समारोह के मुख्य अतिथि इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के मानविकी विद्यापीठ के निदेशक डॉ. सत्यकाम ने मुक्तिबोध को एक बेचैन आत्मान्वेषण का कवि कहा, जिनका टकराव पूंजीवाद से होता है। उन्होंने कहा कि आज के दौर में ये दोनों कवि बेहद प्रासंगिक हैं। बिहार विश्वविद्यालय के पूर्व हिंदी विभागाध्यक्ष डा. प्रमोद कुमार सिंह ने मुक्तिबोध और त्रिलोचन की सहर्धिमता को याद करते हुए बताया कि 'धरती' की पहली समीक्षा मुक्तिबोध ने ही की थी।

मुक्तिबोध की कविता 'ब्रह्मराक्षस' भारतीय बुद्धिजीवियों की मनोदशा पर एक करारा व्यंग्य है। उद्घाटन सत्र के अध्यक्ष के आसन से प्रो. अजीत कुमार वर्मा ने मुक्तिबोध और त्रिलोचन के विचारों की लय को रेखांकित किया।

हिंदी विभागाध्यक्ष डा. चंद्रभानु प्रसाद सिंह ने संसूचित किया कि यह बिहार का एकमात्र विश्वविद्यालय है, जिसने मुक्तिबोध और त्रिलोचन का स्मरण किया। उद्घाटन-सत्र में कुलपति समेत मंचासीन विद्वानों ने स्मारिका का विमोचन किया, जिसमें 120 शोध- सार और शोधालेख प्रकाशित किए गए हैं। आगत अतिथियों का मिथिला की परंपरा के अनुरूप पाग, चादर और प्रतीक चिह्न से पूर्व मानविकी संकायाध्यक्ष डा. रामचंद्र ठाकुर ने स्वागत और अभिनंदन किया। कार्यक्रम का संचालन डा. विजय कुमार ने किया, जबकि धन्यवाद ज्ञापन डाट सुरेंद्र प्रसाद सुमन ने किया।

'बाल साहित्यश्री सम्मान' से नवाजे गये डॉ. राकेश चक्र

नई दिल्ली । यहां पिछले दिनों संस्कृति मंत्रालय के दिल्ली लाइब्रेरी बोर्ड के तत्वावधान में कांस्टीट्यूशनल क्लब में सम्मान अर्पण समारोह में केंद्रीय मंत्री विजय गोयल ने कहा कि पत्रिकाएँ निकालना इतना आसान नहीं, जितना लोग समझते है। मैंने भी अपने छात्र जीवन में दो बार मासिक पत्रिका निकालने का प्रयास किया, लेकिन एक अंक के बाद दूसरा अंक नहीं निकाल सका। आज देख रहा हूँ कि पर्यटन पर हिन्दी में 'प्रणाम पर्यटन'

जैसी पत्रिका पिछले एक साल से निरंतर प्रकाशित हो रही है। यह एक अनुकरणीय कार्य है। यह बात मैं इसलिए कह रहा हूँ क्योंकि मेरी भी रुचि पर्यटन में रही है।

दिल्ली लाइब्रेरी बोर्ड के अध्यक्ष राम शरण गौड़ ने कहा कि मोबाइल की संस्कृति के दौर में पाठकों की संख्या बढ़ रही है। पूर्वी दिल्ली में पंडित दीनदयाल संस्कृति अध्ययन केंद्र खुलने जा रहा है। माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय के कुलपति ब्रज किशोर कुठियाला ने कहा कि साहित्यकार समाज का आईना होता है। इस अवसर पर साहित्यकार डॉ. राकेश चक्र को सम्मान स्वरूप डेढ़ लाख रुपये से पुरस्कृत किया गया। डॉ. राकेश चक्र को यह सम्मान उनके अब तक के सम्मान और पुरस्कारों में सबसे उल्लेखनीय रहा। इस अवसर पर डॉ. चक्र के करीबी मित्र और परिजन भी उपस्थित रहे। डॉ चक्र की अब तक करीब आठ दर्जन पुस्तकें विभिन्न विषयों में प्रकाशित हो चुकी हैं।

कार्यक्रम की अध्यक्षता दयाशंकर सिन्हा ने की। इस अवसर पर साहित्यकार सतीश मित्तल, रमेशचंद्र, देवेन्द्र दीपक, एच बालसुब्रह्मणयम, शांति कुमार स्याल, राजेंद्र राजा, डॉक्टर सदानंद प्रसाद गुप्त, निशांत केतु, डॉक्टर कलानाथ मिश्र, प्रो. ओमीश परूथी, डॉक्टर कृष्ण कुमार, विरेन्द्र आजम, प्रदीप श्रीवास्तव आदि को भी सम्मानित किया गया।

रामकुमार कृषक को 10वां बृजलाल द्विवेदी सम्मान

भोपाल (म.प्र.)। यहां पिछले दिनो 'मीडिया विमर्श' की ओर से आयोजित एक समारोह मेंवरिष्ठ साहित्यकार डॉ. विजय बहादुर सिंह ने पंडित बृजलाल द्विवेदी अखिल भारतीय साहित्यिक पत्रकारिता सम्मान समारोह में कहा कि जब हम एकांत में होते हैं तो साहित्य के शब्द गुनगुनाते हैं। शब्द आत्मा से संवाद करते हैं। जब हम आत्मा के पास जाते हैं, तब भी हम साहित्य से संवाद करते हैं। इस अवसर पर साहित्यिक पत्रिका 'अलाव' के संपादक रामकुमार कृषक को 10वां पं. बृजलाल द्विवेदी सम्मान प्रदान किया गया। साहित्यकार डॉ. विजय बहादुर सिंह ने कहा कि कवि में संस्कृति निवास करती है। जब पूछा जाता है कि संस्कृति क्या है, तब हम कहते हैं कि महाभारत और रामायण हमारी संस्कृति है। यानी कवि हमारी संस्कृति की पहचान होते हैं। कोई भी विश्वविद्यालय कवि नहीं बना सकता। जिस प्रकार वृक्ष उगता है, पहाड़ से नदी निकलती है, उसी तरह कवि भी नैसर्गिक होता है। समारोह में रामकुमार कृषक को शॉल, श्रीफल और मोमेंटो से सम्मानित किया गया। पत्रकारिता राजनीति के पक्ष में खड़ी हो सकती है, किंतु साहित्य कभी किसी के पक्ष या विपक्ष में नहीं लिखा जाता। साहित्य सत्य पर टिका होता है। महाभारत और रामायण कभी झूठे नहीं पड़ेंगे। भारतीय परंपरा में शब्द को ब्रह्म कहा गया है। वेद-उपनिषद ब्रह्म हैं। शब्द के ब्रह्म होने की सबसे अधिक संभावना जिस क्षेत्र में बनती है, वह साहित्य ही है।

रमेश यादव को अकादमी पुरस्कार : मुंबई (महाराष्ट्र)। यहां के रंग शारदा सभागार में पिछले दिनो महाराष्ट्र राज्य साहित्य अकादमी की ओर से केन्द्रीय गृहराज्य मंत्री हंसराज अहीर ने रमेश यादव को उनकी पुस्तक 'लोकरंगझ महाराष्ट्र की लोककलाएं एवं संस्कृतिझएक परिचय' को फणीश्वरनाथ रेणु स्वर्ण सम्मान प्रदान किया। पुरस्कार स्वरूप साढ़े तीन हजार रुपए, स्मृति चिन्ह, सम्मान पत्र, प्रशस्ति पत्र प्रदान किया गया। इस अवसर पर शिक्षा मंत्री विनोद तावड़े, विधायक आशीष शेलार, अकादमी के कार्याध्यक्ष नंदलाल पाठक, अभिनेता राजेन्द्र गुप्ता, वरुण बडोला, पुष्पा भारती एवं अन्य सुनीता काम्बोज की उपस्थिति उल्लेखनीय रही।

'तेरा होना तलाशूँ' गजल संग्रह का लोकार्पण

अलवर (राजस्थान)। कवि विनय मिश्र के दूसरे गजल संग्रह 'तेरा होना तलाशूँ' के लोकार्पण अवसर पर मुख्य अतिथि कथाकार असगर वजाहत ने कहा कि 'विनय मिश्र की गजलों की पैनी धार समकालीन कविता की अंतर्वस्तु को समृद्ध करती है। उनमें किसी प्रकार का यूटोपिया नहीं नहीं रचा जाता है। इस अवसर पर विनय मिश्र ने अपनी गजलों का पाठ करने के साथ ही कहा कि उर्दू की तरह ही हिंदी में गजलों की एक लंबी परंपरा है। अमीर खुसरो, कबीर, निराला, त्रिलोचन, शमशेर, सूर्यभानु गुप्त, भवानी शंकर, दुष्यंत कुमार और अदम गोंडवी इसी हिन्दी कविता परंपरा के गजलकार हैं। समकालीन गजलों की शुरूआत दुष्यंत कुमार से होती है।

आलोचक डॉ. जीवन सिंह ने कहा कि विनय मिश्र के पास गजल कहने का अपना मुहावरा है और समकालीन समय की जटिलताओं की समझ भी। यही वह आधार है जो बतलाता है कि हिंदी गजल की परंपरा को विकसित करने में उनकी भूमिका महत्वपूर्ण है। डॉ. दिनेश कुमार ने कहा कि वर्तमान समय में हिंदी गजल की जो स्थिति है, उसमें गजल की रचना ही महत्वपूर्ण नहीं है बल्कि उसे हिंदी कविता की मुख्यधारा में स्थापित करने के लिए सचेत-सांगठनिक प्रयास करने की भी जरूरत है।

प्रो. शंभूनाथ तिवारी ने कहा कि विनय मिश्र की गजलों में सामाजिक एवं राजनीतिक विडंबनाओं एवं व्यवस्था विरोध का स्वर हर तरफ मौजूद है। समारोह की अध्यक्षता कर रहे 'अलाव' के संपादक एवं प्रतिष्ठित कवि रामकुमार कृषक कहा कि विनय मिश्र की गजलों में एक खास तरह का खुलापन और स्वायत्तता बोध है। ज्योत्स्ना प्रवाह ने कहा कि विनय मिश्र की गजलों में बनारस का मिजाज बोलता है। युवा कवि डॉ. लवलेश दत्त, शायरा अनु जसरोटिया, हरिशंकर शर्मा आदि ने भी समारोह को सम्बोधित किया। इस अवसर पर डॉ. कैलाश पुरोहित, जुगमंदिर तायल, रेवती रमण शर्मा, प्रो. अनूप सिंह नादान, दौलत वैद्य, हरिशंकर गोयल, डॉ. श्याम शर्मा वशिष्ठ, वीरेन्द्र विद्रोह, डॉ. प्रदीप प्रसन्न, डॉ. वेदप्रकाश यादव, प्रो. नीलाभ पंडित, रामचरण राग, डॉ. रमेश बैरवा, मुंशी खान, रेणु अस्थाना, सूर्यदेव बारेठ आदि की उपस्थिति उल्लेखनीय रही। डॉ. सीमा विजयवर्गीय ने कार्यक्रम का संचालन एवं राजकीय कला महाविद्यालय के प्राचार्य डॉ. रमेश चंद्र खंडूडी ने आभार व्यक्त किया।

सर्व भाषा साहित्य उत्सव में साहित्यिक कृतियों का विमोचन एवं सृजन-सम्मान

नई दिल्ली। गांधी शांति प्रतिष्ठान में पिछले दिनो सर्व भाषा ट्रस्ट की ओर से 'सर्व भाषा साहित्य उत्सव' का आयोजन किया गया। इस अवसर पर कार्यक्रम के मुख्य अतिथि मेहता ओपी मोहन ने कहा कि जिस प्रकार भारतीय संस्कृति वसुधैव कुटुंबकम् की अवधारणा पर सबको जोड़ना सिखाती है, उसी प्रकार 'सर्व भाषा ट्रस्ट' द्वारा सबको जोड़ा जा रहा है। कार्यक्रम की अध्यक्षता न्यास के अध्यक्ष डॉ. अशोक लव ने की। कार्यक्रम के प्रथम सत्र में चित्रकार असगर अली की संस्था कलाभूमि की ओर से चित्र प्रदर्शनी आयोजित की गई। द्वितीय सत्र में न्यास की त्रैमासिक ई-पत्रिका 'सर्व भाषा' के प्रवेशांक का लोकार्पण किया गया। समारोह में डॉ अशोक लव की बाल-साहित्य की चार पुस्तकों, डॉ राजीव कुमार पाण्डेय के हाइकु संग्रह 'मन की पाँखें' और लज्जाराम राघव तरुण की दो पुस्तकों 'आँखिन देखी लघुकथाएँ' तथा 'रुको तो सही एक बार' का लोकार्पण किया गया। इस दौरान मेहता ओ पी मोहन, शिक्षाविद् डॉ प्रसन्नांशु, फिल्म एक्सपर्ट उदयवीर सिंह सेनापति, पत्रकार अशोक चतुर्वेदी, प्रदीप गुलाठी, जनाब फरहान परवेज एवं प्रफुल्ल गोयल को 'सर्व भाषा सम्मान' से सम्मानित किया गया।

'अंतोन चेखब की कहानियां' का विमोचन

देहरादून (उत्तराखंड)। यहां पिछले दिनो केन्द्रीय विद्यालय हाथीबड़कला-1 में आयोजित एक कार्यक्रम में पद्मश्री लीलाधर जगूड़ी और गीतकार बुद्धिनाथ मिश्र के आतिथ्य में मास्को विश्वविद्यालय के हिन्दी प्रोफेसर और कवि अनिल जनविजय की हिन्दी में अनूदित पुस्तक 'अंतोन चेखब की कहानियां' का विमोचन किया गया। पद्मश्री लीलाधर जगूड़ी ने कहा कि चेखव की कहानियों में रोचकता, मौलिकता , मार्मिकता, मानवीय मूल्यों के अवमूल्यन के प्रति गहरी चिंता है। गीतकार बुद्धिनाथ मिश्र ने कहा कि जनविजय ने भारतीय रूसी साहित्य में अनुवाद के जरिए भारत-रूस मैत्री की दृष्टि से बड़ा काम किया हैं। अनिल जनविजय ने कहा कि चेखब, गोर्की, पुश्किन जैसे महान रूसी साहित्यकारों की रचनाओं को आधुनिक युवा पीढ़ी तक पहुंचाना उनके सृजन का प्रथम लक्ष्य है। कहानी में जहां रूसी लोक जीवन धड़कता है, भारतीय पाठकों को भी ये कहानियां अपनी जैसी लगेंगी। उन्होंने कहा कि रूस में भी भवानी प्रसाद मिश्र, शैलेन्द्र मंगलेश डबराल ,अज्ञेय, कृष्णचन्दर प्रेमचंद, धर्मवीर भारती, अमरकांत लीलाधर जगूड़ी, बुद्धिनाथ मिश्र आदि कवि और लेखकों को पढ़ाया जाता है। इस दौरान विद्यालय के प्राचार्य इन्द्रजीत सिंह, रंजीता सिंह,अभिषेक अग्रवाल, जय प्रकाश त्रिपाठी, गुलाब सिंह राणा, कल्पना श्रीवास्तव, बलबीर सिंह आदि की उपस्थिति उल्लेखनीय रही।

सेवानिवृत्त राज्यकर्मियों को हिंदी-उर्दू पुरस्कार

लखनऊ। उत्तर प्रदेश के राज्यपाल ने पिछले दिनो अपने सरकारी काम-काज वक्त बचाकर साहित्य सृजन करने वाले पूर्व डीजपी महेश चंद्र द्विवेदी को प्रताप नारायण मिश्र सम्मान, रिटायर्ड आईएएस जयशंकर मिश्र को शिव सिंह सरोज सम्मान, वरिष्ठ अधिकारी गोपाल नारायण श्रीवास्तव को बालकृष्ण भट्ट सम्मान, रिटायर्ड पुलिस अधिकारी नंदल हितैषी को महादेवी वर्मा सम्मान समादृत किया।

इसके अलावा डॉ रश्मिशील को महावीर प्रसाद द्विवेदी पुरस्कार, मूसा खान 'अशान्त बाराबंकवी' को भगवती चरण वर्मा पुरस्कार डॉ पीवी जगनमोहन को सुमित्रानन्दन पंत पुरस्कार, बलदेव त्रिपाठी को अमृतलाल नागर पुरस्कार, राम नगीना मौर्य को विद्या निवास मिश्र पुरस्कार, डॉ शोभा दीक्षित 'भावना' को श्यामसुन्दर दास पुरस्कार, डॉ उमेश चन्द्र वर्मा 'आदित्य' को जयशंकर प्रसाद पुरस्कार, अनुराग मिश्र 'गैर' को शिवमंगल सिंह 'सुमन' पुरस्कार, वीरपाल सिंह 'निश्छल' को गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' पुरस्कार, गीता कैथल को हरिवंश राय बच्चन पुरस्कार, राकेश ऋषभ को रामधारी सिंह 'दिनकर' पुरस्कार, मो. फारूक को 'गालिब' पुरस्कार, बिजारत नबी को फिराक गोरखपुरी पुरस्कार, मो. मुईन अंजुम सिद्दीकी को अमीर खुसरो पुरस्कार, सगीर अहमद (सगीर नूरी) को अकबर इलाहाबादी पुरस्कार, और वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी शाहनवाज कुरैशी को उर्दू के मीर तकी मीर सम्मान से समादृत किया गया। सभी को सम्मान राशि एक-एक लाख रुपए प्रदान किए गए।

चार पुस्तकों का प्रकाशनोत्सव

नई दिल्ली। ऋत फाउंडेशन एवं युवा उत्कर्ष साहित्यिक मंच के संयुक्त तत्वावधान में चार पुस्तकों का भव्य लोकार्पण संपन्न हुआ जिनमें डा.पवन विजय द्वारा रचित पुस्तक 'बोलो गंगा पुत्र' (उपन्यास), सुरेशपाल वर्मा जसाला का 'अंगार और फुहार' (काव्य संग्रह), युवा कवि एवं साहित्यकार ओम प्रकाश शुक्ल के काव्य संग्रह 'गांधी और उनके बाद' एवं रामकिशोर उपाध्याय के काव्य संग्रह 'दीवार में आले' पर वक्ताओं ने विचार व्यक्त किए। इस अवसर पर अरविन्द कुमार सिंह, रविन्द्र कुमार, अजित दुबे, संजीव वर्मा सलिल, डा.प्रशांत त्रिपाठी, डॉ. एस. सी. गोयल, गिरीश पंकज, ओमप्रकाश प्रजापति आदि की उपस्थिति उल्लेखनीय रही।

भोपाल में कवि 'व्योम' का सम्मान

भोपाल (म.प्र.)। यहां पिछले दिनो अभिनव कला परिषद के 55वें वार्षिक समारोह 'कला पर्व-उत्सव गणतंत्र' में मुरादाबाद के कवि योगेन्द्र वर्मा 'व्योम' को गीत-नवगीत तथा समीक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय सृजन के लिए ₹अभिनव शब्द शिल्पी अलंकरण₹ से सम्मानित किया गया। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि बाबूलाल गौर, सांसद आलोक संजर, आईसेक्ट विश्वविद्यालय के कुलाधिपति संतोष चौबे एवं संस्था के संस्थापक महासचिव सुरेश तांतेड़ ने व्योम को अंगवस्त्र, प्रतीक चिन्ह, सम्मानपत्र एवं श्रीफल भेंट किया। कार्यक्रम में यतीन्द्रनाथ राही, कृष्ण बक्षी, दिनेश प्रभात, विनोद निगम, शिव कुमार अर्चन, नरेन्द्र दीपक, जहीर कुरैशी, मनोज जैन मधुर, डॉ मधु शुक्ला, डॉ संध्या सिंह आदि की उपस्थिति उल्लेखनीय रही। संचालन कमलेश जैमिनी ने किया।

हरियाणा-पंजाबी साहित्य अकादमी ने की चार साल के पुरस्कारों की घोषणा

चंडीगढ़ (पंजाब)।हरियाणा-पंजाबी साहित्य अकादमी ने पिछले दिनो वर्ष 2013, 2014, 2015 और 2016 के लिए अकादमी के वार्षिक तथा पुस्तक एवं कहानी पुरस्कारों की घोषणा कर दी है। अकादमी के कार्यकारी उपाध्यक्ष राजेश खुल्लर की अध्यक्षता में हुई एक बैठक में इन पुरस्कारों के लिए साहित्यकारों के नामों की घोषणा की गई। ढाई लाख के हरियाणा पंजाबी गौरव अवार्ड आत्मजीत हंसपाल, केदारनाथ केदार, डा. रमेश कुमार, डॉ. अमृत कौर रैना को, सवा लाख रुपए का भाई संतोख सिंह अवार्ड डॉ. पाल कौर एवं श्रीमती जागीर कौर संधू, डा.साहिब सिंह अर्शी, डॉ. सुदर्शन गासो, जोगिन्दर कौर अग्निहोत्री को, एक लाख 11 हजार रुपए का बाबा शेख फरीद अवार्ड डॉ. नायब सिंह मंडेर, सुबेग सद्दर, दर्शन सिंह साधू सिंह किसान को, एक लाख का संत तरन सिंह वहिमी अवार्ड डॉ. गुरदरपाल सिंह, लखविन्दर सिंह बाजवा, इकबाल सिंह, मंजीत कौर अंबालवी को, 51 हजार का कवि हरभजन सिंह रैनू अवार्ड पूरन सिंह निराला, हरिभजन सिंह राजा, सुभाष सलूजा, कंवलजीत कौर जुनेजा को दिए जाने की घोषणा की गई है। इसके अलावा मंजिन्दर सिंह, करनैल सिंह अस्पाल, भूपिन्दर सिंह पन्नीवालीया, सुबेग सिंह, बूटा सिंह प्रीतम, केसरा राम, गुरप्रीत सिंधरा, कुलविंदर सिंह, गुरमंगत गाफल, डा. परमजीत कौर सिधू, डॉ. जीत सिंह, डॉ. हरमीत कौर, डॉ. देविन्दर बीबीपुरीया, सुरेंद्र सिंह पालना, डा. सीएल जुनेजा, भूपिंदर कौर, रघुवीर सिंह ईसर और गुरप्रीत कौर के नाम भी पुरस्कार-सूची में हैं।

लेखिकाओं एवं कवयित्रियों का सृजन-सम्मान : मेरठ (उ.प्र.)। समकालीन महिला साहित्य मंच की ओर से पिछले दिनो यहां लेखिकाओं एवं कवयित्रियों को महिला साहित्य सृजन सम्मान से सम्मानित किया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षता रश्मि अग्रवाल ने की। मुख्य अतिथि डॉ सुधा गुप्ता और विशिष्ठ अतिथि ममता नौगरैया रहीं। सुरेंद्र प्रताप, डॉ. एससी नौगरैया, डॉ. वीके अग्रवाल मंचासीन रहे। संचालन आकाशवाणी उद्घोषिका डॉ. अल्पना सुहासिनी ने किया। इसमें 30 से अधिक कवयित्रियों ने अपनी रचनाएं सुनाईं। आयोजन में निरुपमा प्रकाशन से प्रकाशित 'महिला साहित्यकार भाग-3' एवं डॉ. स्वप्ना उप्रेती की पुस्तक 'साहित्य समीक्षाः नए आयाम' का लोकार्पण किया गया। सम्मानित होने वाली स्त्री साहित्यकारों में डॉ. नीलम देवी, डॉ. विनीता परमार, रजनी सिंह, सुवर्णा अ. जाधव, शिवाली अग्रवाल, डॉ. पूनम चौहान, सुमन चौधरी, सुनीता शर्मा, डॉ. संध्या तिवारी, रानी सुमिता, सीमा शिव, हरे सुमन, आशा शर्मा, अनिता एस, कर्पूर स्वप्ना उप्रेती, मंजू यादव रहीं। समारोह में महिला लेखकों की 200 से अधिक पुस्तकों की प्रदर्शनी लगाई गई।

'अम्बिका प्रसाद दिव्य स्मृति पुरस्कार' की घोषणा : भोपाल। यहां पिछले दिनो साहित्य सदन में आयोजित एक सादे समारोह में जगदीश किंजल्क ने 'अम्बिका प्रसाद दिव्य स्मृति' पुरस्कारो की घोषणा की। विभिन्न विधाओं के सृजन-शिल्पियों के लिए घोषित नामावली में कुसुम खेमानी, डॉक्टर तारकेश्वर उपाध्याय, डॉक्टर अरविंद जैन, सुदर्शन सोनी, आलोक सक्सेना, बिहारी दुबे, आशा शर्मा, डॉक्टर सुमन लता श्रीवास्तव, लक्ष्मी रूपल, घमंडी राम किशोर मेहता, गंगा शरण प्यासा, ब्रज श्रीवास्तव, शैलेंद्र सिंह शैल, डाक्टर परशुराम शुक्ल, घमंडीलाल अग्रवाल, डॉक्टर तनूजा चौधरी, डॉक्टर ए. फातिमा की कृति को सम्मानित किए जाने की घोषणा की गई। कुलपति रामदेव भारद्वाज, प्रभु दयाल मिश्र, डॉक्टर राधा बल्लभ शर्मा, घनश्याम सक्सेना, डॉक्टर विनय राजाराम, मयंक श्रीवास्तव, विजय लक्ष्मी विभा, राजेन्दर नागदेव, हरि जोशी, पी.डी खैरा, अरुण तिवारी, राधेलाल विजघावने, डॉक्टर सुनीता खत्री आदि ने पुरस्कृति होने वाली कृतियों का चयन किया।

माँ धनपती देवी स्मृति कथा सम्मान : सुल्तानपुर (उ.प्र.)। वर्ष 2011 से प्रारम्भ 'माँ धनपती देवी स्मृति कथासाहित्य सम्मान-2018' के लिये हिन्दी कहानीकारों से घोषित रूप से मौलिक, अप्रकाशित व अप्रसारित एक कहानी (लघुकथा नहीं) पंजीकृत डाक से 15 सितंबर 2018 तक आमंत्रित हैं। प्रतियोगिता में किसी भी आयु वर्ग के कथाकार अपनी फोटो तथा संक्षिप्त परिचय के साथ एक ही कहानी तीन प्रतियों में रजिस्टर्ड डाक से भेज सकते हैं। कहानी के मौलिक, अप्रकाशित और अप्रसारित होने का प्रमाणपत्र कहानी के साथ ही भेजना अनिवार्य है। तीन श्रेष्ठ कहानियों को चयनित करके 20 दिसम्बर 2018 को सुलतानपुर,उत्तर प्रदेश में आयोजित विशेष साहित्यिक समारोह में उपस्थित सफल कथाकारों को अंगवस्त्रम, स्मृति चिह्न, प्रमाण-पत्र एवं नकद राशि क्रमशः प्रथम 2011 रुपए, द्वितीय1711 रुपए एवं तृतीय 1511 रुपए से समादृत किया जायेगा। कहानियाँ भेजने का पता है- डॉ. शोभनाथ शुक्ल, साक्षी विला, 1274/28, बढ़ैयावीर, सिविल लाइन्स-2, सुलतानपुर (उ.प्र.)-228001

नेपाल में सोशल मीडिया मैत्री सम्मेलन

जनकपुर (नेपाल)। यहाँ हाल ही में भारतीय राजदूतावास, नेपाल भारत मैत्री संघ, वीरांगना फाउंडेशन, काठमांडू तथा हम साथ-साथ एवं भारत की विभिन्न साहित्यिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संस्थाओं के संयुक्त तत्वावधान में दो दिवसीय सोशल मीडिया मैत्री सम्मलेन एवं सम्मान समारोह का आयोजन किया गया। इस अवसर पर सम्मानित अतिथियों द्वारा भारत-नेपाल के संबंधों को और मजबूत बनाने एवं राष्ट्र भाषा हिंदी के प्रचार प्रसार के लिए सबको और अधिक एकजुट होने की अपील की गई। प्रारम्भ में नेपाल और भारत के कलाकारों और उपस्थितजनों ने दोनों देशों के राष्ट्रीय ध्वज के साथ राष्ट्रीय और भाईचारा गीत गाकर माहौल को मैत्री भाईचारे और राष्ट्रीयता के रंग में रंग दिया ।

अतिथियों द्वारा हम सब साथ साथ पत्रिका के सोशल मीडिया पर केन्द्रित अंक के साथ ही शशि श्रीवास्तव के बाल कहानी संग्रह ह्लनन्हें कदम, ऊँची उड़ानह्व का लोकार्पण किया गया। इसी क्रम में संदीप तोमर की आत्मकथा ह्लएक अपाहिज की डायरीह्व का लोकार्पण भी हुआ। अगले चरण में सम्मेलन के राष्ट्रीय अध्यक्ष किशोर श्रीवास्तव ने प्रतिभागियों का परिचय कराया।

इस अवसर पर बेटी के महत्त्व को रेखांकित करते हुए साहित्यकार संदीप तोमर ने अपनी लघुकथा ह्लदूसरी बेटी का बापह्व के कथानक पर खुलकर चर्चा की। परिचर्चा के विभिन्न सत्रों में अतिथि के रूप में सुभाष चंदर, आर. बी. यादव आदि गणमान्य अतिथि शामिल रहे। अगले सत्र में उमाशंकर मिश्र एवं ज्योति स्नेह के सञ्चालन में बहुभाषी कवि सम्मलेन में अनंत आलोक, ईश्वर चंद राही, ई. गणेश जी बागी, लता सिन्हा ज्योतिर्मय, लक्ष्मीन्द्र सिन्हा, परिणिता सिन्हा, आदि ने काव्यपाठ किया।

इससे पूर्व समारोह का उद्घाटन नेपाल प्रदेश नंबर दो के कानून एवं आंतरिक मामला मंत्री ज्ञानेंद्र यादव, भारतीय राजदूतावास काठमांडू के डीसीएम डॉ. अजय कुमार, भारतीय वाणिज्य दूतावास के काउंसलर वीसी प्रधान, स्थानीय पत्रकार सीताराम अग्रहरि आदि ने दीप प्रज्वलित कर किया गया। ह्लमैत्री-भाईचारे के प्रचार-प्रसार में सोशल मीडिया की सकारात्मक एवं नकारात्मक भूमिकाह्व पर परिचर्चा का आयोजन किया गया। इसमें भारत और नेपाल के दूरदराज क्षेत्रों से पधारे डॉ. दिग्विजय शर्मा, डॉ. अर्चना सक्सेना, कैलाश चंद जोशी, डा. निर्मला डांगी, ओजेंद्र तिवारी, विभा रानी श्रीवास्तव, डॉ. उदय प्रताप सिंह आदि ने अपने विचार व्यक्त किए।

सम्मलेन के अंतिम सत्र में सभी प्रतिभागियों को उनके साहित्यिक, सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र के उत्कृष्ट प्रदर्शन के लिए स्मृति चिन्ह, सर्टिफिकेट देकर सम्मानित किया गया।

आजमगढ़ की धरती से गंभीर पत्रकारिता का हस्तक्षेप

आजमगढ़ (उ.प्र.)। जनपद मुख्यालय के नेहरू हाल में पिछले दिनो 'मीडिया समग्र मंथन-2018' का आयोजन किया गया। प्रोफेसर देवराज ने कहा कि मरना जिसको आता हो है जीने का अधिकार उसे ही। आजमगढ़ की धरती से गंभीर पत्रकारिता का हस्तक्षेप किया जाना सकारात्मक पहल है। पिछले सात दशकों में आम आदमी को मत बना दिया गया है। दुनिया का अधिकांश सौंदर्य श्याम है, आचार्य नरेंद्रदेव कहते थे कि विचार की आवश्यकता और उसकी स्वतंत्रता अनिवार्य है। पिछले सात दशकों में विचार की कितनी रक्षा और सुरक्षा हम कर पाए हैं, यह देखना होगा।

पूर्व पुलिस महानिदेशक प्रकाश सिंह ने कहा कि हिंदुस्तान के लोकतंत्र पर हम सभी को अभिमान है। इसके साथ ही हमने यदि अपनी कमजोरियों का निदान नहीं किया तो लोकतंत्र मजबूत नहीं हो पाएगा। पिछली लोकसभा में 34 फीसदी सांसद आपराधिक पृष्ठभूमि के थे। यह संख्या लगातार बढ़ती जा रही है। देश में ऐसे लोगों से राष्ट्रीय सुरक्षा की उम्मीद कैसे की जा सकती है। संसदीय व्यवस्था का जिस तरह से चरित्र बदल रहा है। लोकतंत्र स्टेट की ओर से क्या हम क्रिमनल स्टेट की ओर तो नहीं बढ़ रहे हैं। जनप्रतिनिधि आज लोकतंत्र की कब्रें खोद रहे हैं।

सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के डीएवीपी विभाग में प्रशासनिक अधिकारी गोपाल जी राय ने कहा कि मीडिया पर आरोप लगाना आसान है। सर्वोच्च न्यायालय तक न्याय मांगने मीडिया के पास आते हैं। वर्तमान मीडिया भी विदेशी फंडिंग से चल रही हैं। पत्रकार को बिकाऊ कहने वाले उसकी हकीकत नहीं जानते। जनता ने मीडिया को टिकाऊ बनाने के लिए कभी कोई आंदोलन ही नहीं किया। देश के किसी भी सदन में पत्रकारों के कल्याण को लेकर कोई सवाल नहीं उठाया गया। श्रीगोपाल नारसन ने कहा कि मीडिया हमारे लोकतंत्र का सच्चा कवच है। यह आत्ममंथन और विवेचन भी करती है। डॉ योगेंद्र नाथ शर्मा 'अरुण' ने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि हम संविधान के नाम पर जातियों को बांट रहे हैं। हम माइंड गिनने के बजाय सिर गिनने की नीतियों का पालन कर रहे हैं। हम आरक्षण के नाम पर बाबा साहब का मजाक उड़ा रहे हैं।

इससे पूर्व उद्घाटन कार्यक्रम की अध्यक्षता डॉ. योगेन्द्रनाथ शर्मा अरूण ने की और मुख्य अतिथि रहे पूर्व डीजीपी प्रकाश सिंह। इसके अलावा महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के प्रो. देवराज, दैनिक देशबंधु के कार्यकारी संपादक जयशंकर गुप्त, गोपाल जी राय, विजयनारायण, गोपाल नारसन आदि ने दीप प्रज्ज्वलन किया। 'लोकतंत्र, मीडिया और हमारा समय' विषय पर प्रोफेसर देवराज, उत्तराखण्ड के स्वतंत्र पत्रकार श्रीगोपाल नारसन, गोपाल जी राय, विजय नारायण, पुण्य प्रसून वाजपेयी आदि ने संबोधित किया। दूसरे दिन अंतिम सत्र में कवि सम्मेलन व मुशायरे का आयोजन किया गया।

इस हवा को क्या हुआ!

यह अँधेरी घाटियों की चीख है मुट्ठियों में बंद केवल भीख है

हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपनी पुस्तक 'साहित्य सहचर' में कहा है कि रचनाकार के पारिवारिक, सामाजिक और वैयक्तिक जीवन के साथ-साथ उसके आसपास के वातावरण तथा समकालीन रचनाशैली को ध्यान में रखकर ही उसकी रचनाओं का आँकलन करना चाहिए। इस आधार पर जब हम रमेश गौतम के नवगीत संग्रह 'इस हवा को क्या हुआ' का अध्ययन करते हैं तो पाते हैं कि कवि ने शत-प्रतिशत सच्ची संवेदनाओं को अपने शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया है। रमेश गौतम इस प्रथम नवगीत संग्रह में संकलित अधिकांश नवगीत विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर प्रकाशित होते रहे हैं। पुस्तक में कुल 80 नवगीत संग्रहीत हैं जिनमें सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक संवेदनाओं के साथ-साथ अपने वातावरण और परिवेश की विभिन्न सम-विषम परिस्थितियों को मुखर अभिव्यक्ति प्रदान की है। वे लिखते हैं–

माँ अक्षरा अमृतमयी/ हिन्दी तुझे शत-शत नमन
तू ही चरण स्पर्श में/आशीष में मनुहार में
संवेदनाओं में बँधी / तू एकता परिवार में
संवाद में अनुवाद में/ तू आर्य भाषा की किरण

अपने समय की विद्रूपताओं को वे बखूबी अपने नवगीतों में अभिव्यक्त करते हैं। आज हर ओर एक अस्त-व्यस्त से जीवन को देखकर वे लिखते हैं–

बावली-सी खोजती-फिरतीं / दिशाएँ शाम को
लोग कितना भूल बैठे हैं / सुबह के नाम को
मंदिरों के द्वार पर / ठिठकी/ खड़ी हैं अर्चनाएँ

उच्चाकांक्षाएँ किसके मन में नहीं होतीं? प्रायः प्रत्येक मनुष्य देवता होने का स्वप्न देखता है किन्तु गौतम जी ऐसा नहीं सोचते हैं। उनका मानना है कि देवता बनने के बाद तो और उलाहनाएँ मिलती हैं। लोग अनेक दोष निकालने लगते हैं। वे कहते हैं–

व्यर्थ है रोना/ यहाँ मत / देवता होना
कुछ नहीं / पाषाणधर्मी /रूप पाओगे
युद्ध में फिर/ दानवों से/ हार जाओगे
देवता होना/ स्वयं अस्तित्व का खोना

आज के समय अच्छी बातें कोई सुनना नहीं चाहता। यदि कोई सुनता भी है तो बस दूसरे कान से निकालने के लिए। लोगों में नैतिक मूल्यों का महत्त्व ही नहीं रहा। जबकि भारतीय साहित्य ने सदैव मनुष्य के नैतिक उन्नयन की ही सीख दी है। अनेकानेक ग्रंथ नैतिक मूल्यों के उपदेशों से भरे पड़े हैं किन्तु वर्तमान समय में वह सब व्यर्थ है–

शब्द जो हमने बुने/ सिर्फ बहरों ने सुने
यह अँधेरी घाटियों की चीख है / मुट्ठियों में बंद केवल भीख है
बस रूई की गाँठ / जैसे हैं पड़े / मन करे जिसका धुने

संवेदनाएँ ही हृदय की पीड़ा को जन्म देती हैं और उसी पीड़ा की मसि में गीतकार अपने लेखनी डुबो- डुबो कर दुख-सुख के गीतों का सृजन करता है। उसी से आशा की बातें लिखता है। समाज को नई दिशा देने की बात कहता है। गौतम जी लिखते हैं–

पीर के पलने में / पले हैं हम / उड़ाने यहीं से भरेंगे
रिक्त संवेदना से मिला है / सभ्यता का सजा हर स्वयंवर
वंशधर अक्षरों के यहाँ कब / हैं खिले कागजी फूल बनकर
छोड़कर / स्वर्णकेशा निमंत्रण / साथ भीगे नयन के दिखेंगे

अपने प्रतिनिधि गीत 'इस हवा को क्या हुआ' में गौतम जी ने अपने समय को पूर्णतः रूपायित कर दिया है। आज के समय में हवा के अंदाज कब बदल जाएँ कुछ नहीं कहा जा सकता है। ऐसी विषम परिस्थियों में न जाने कब क्या हो जाए। प्राणदायिनी हवा न जाने कब जहरीली हो जाए। इस सम्बन्ध में अपनी संवेदना को गौतम जी इस प्रकार व्यक्त करते हैं–

सच न जाने / इस हवा को / क्या हुआ
तितलियों की देह पर / चाकू चलाती यह हवा
जुगनुओं को धर्म के / रिश्ते बताती यह हवा
किस दिशा ने / इस हवा का/ तन छुआ

आज के वातावरण में असली नकली, झूठ-सच, सही-गलत का पता लगाना बहुत मुश्किल हो गया है। वह लिखते हैं–

सत्याग्रह के अर्थ / सिमटते देखे/ कोलाहल में
धुँधले बहुत हो गए अक्षर / कौन यहाँ पहचाने
सत्यमेव जयते के पन्ने / इतने हुए पुराने
किसको पड़ी / खिले ऊँचाई लेकर फिर दलदल में

राजनीतिक व्यवस्था पर व्यंग्य करते हुए गौतम जी ने लिखा है–

सिंहासन बैठे बैरागी / बाँच रहे / गत-आगत को
तन तो पहना जागिया बाना/भव-बंधन से दूर चला
मन के शयनकक्ष में बैठी/ खजुराहो की शिल्पकला
बोध कहाँ मिल पाता ऐसे/ दुविधाग्रस्त तथागत को

मनुष्य नाना प्रकार के प्रयास करके अपने लिए एक छोटा सा घर बनाता है। इस आशा के साथ कि उसके घर में सदैव सुख-शान्ति और आनन्द का वातावरण रहेगा किन्तु हवा की दिशा कब बदल जाए किसके पता? कुछ ऐसी आत्म संवेदना को व्यक्त करते हुए वह लिखते हैं–

गृह-प्रवेश होता / सफल कैसे/ हमारे पाँव की अच्छे नहीं थे
बनाया नीड़ था/कुछ धूप को कुछ छाँव को चुनकर
घिर बादल, गिरी बिजली/खनकती चूड़ियाँ सुनकर
समय का वार होता/ विफल कैसे/ हमारे ठाँव ही अच्छे नहीं थे।

पुस्तक - इस हवा को क्या हुआ (नवगीत संग्रह)

रचनाकार - रमेश गौतम

प्रकाशक अयन प्रकाशन, दिल्ली

विष्णु नागर को पढ़ते हुए कविताएं लिखने और छापने का अंतर्द्वंद्व

हमारे समय के प्रतिष्ठित कवि विष्णु नागर ने कभी लिखा था- 'मेरे अनेक कामों में से एक छोटा-सा काम कविताएँ छापना भी रहा है। इस कारण कुछ दिलचस्प अनुभव हुए हैं।' 'कविकुंभ' को भी हर माह कुछ वैसे ही अनुभवों से गुजरना पड़ता है। हमारा मंतव्य है, इस बार 'शब्दांकुर' में प्रस्तुत नौ कविताएं पढ़ने से पहले कवि विष्णु नागर के शब्दों से मुलाकात कर लेना रचनात्मक दृष्टि से हर नवांकुर के लिए उपयुक्त होगा। यद्यपि यहां प्रस्तुत सभी कविताएं ऐसी नहीं हैं। साथ ही, इस बार 'शब्दांकुर' में मात्र कवयित्रियों की रचनाएं प्रस्तुत करने का प्राथमिक उद्देश्य है, 'बीइंग वुमन' का वार्षिक सम्मान समारोह, जिसमें देश भर से महिला रचनाकार भी बड़ी संख्या में उपस्थित हो रही हैं। संभव इस सामूहिक उपस्थिति के दौरान प्रसंगवश यह विषय भी उनकी चर्चाओं में रहे। विष्णु नागर का अभिमत केवल नवोदित कवयित्रियों ही नहीं, नवोदित कवियों के लिए भी है। - संपादक

प्रतिष्ठित कवि विष्णु नागर लिखते हैं- 'मेरे अनेक कामों में से एक छोटा-सा काम कविताएँ छापना भी रहा है। इस कारण कुछ दिलचस्प अनुभव हुए हैं। बहुत से एकदम नवोदित, कवियों-कवयित्रियों से इस बीच आमना-सामना हुआ है। इनमें से कई से मिलकर यह अहसास तीव्र हुआ है कि हमारे हिंदी प्रदेशों में कविता लिखना बाएँ हाथ का खेल समझा जाता है। लोग इधर लिखते हैं और उधर लिखे की स्याही सूखने से पहले उसके प्रकाशन की जुगत में भिड़ जाते हैं। इन 'कवियों' को लगता है कि कविता लिखना वे माँ के पेट से सीखकर आए हैं, इसलिए उन्हें किसी भी किस्म की तैयारी या अध्ययन आदि की कोई जरूरत नहीं है। इनकी नजर में कविता दरअसल मात्र आत्माभिव्यक्ति है और 'आत्माभिव्यक्ति' के लिए भला भाषा लिखना आने के अलावा और जरूरत भी क्या है? चलो यहाँ तक बात फिर भी कुछ हद तक समझ में आती है मगर फिर उसे दूसरे भी पढ़ें, इसकी आतुरता भी क्यों होनी चाहिए? और अगर इसकी आकुलता किसी में है (और अक्सर सबमें होती है) तो कवि लेखक को लिखने का भी तो कुछ कौशल तो आना चाहिए वरना कोई पढ़ने की तकलीफ क्यों करेगा? सड़क पर मुफ्त में और फुर्सत के समय लोग तमाशा भी तब तक नहीं देखते, जब तक कि उसमें कुछ आकर्षण, कुछ दिलचस्प न हो।

'मैं उन्हें अक्सर असफल ढंग से समझाने की कोशिश करता रहा हूँ कि दुनिया का कोई भी काम सीखना पड़ता है, सिवाय माँ का दूध पीने, रोने, हँसने, नित्यकर्म करने जैसे कुछ कामों को छोड़कर। आप लिखना शुरू करने से पहले वर्णमाला सीखते हैं और इसके लिए भी काफी कोशिश करनी पड़ती है, आप बार-बार गलती करते हैं, तब जाकर कहीं अक्षर लिखना, संयुक्ताक्षर लिखना, उन्हें पढ़ना, ठीक मात्राएँ लगाना और सही वाक्य रचना करना आता है। इससे पहले कलम पकड़ना तक हम बचपन में शिक्षक, माता-पिता आदि की मदद से सीखते हैं।

'इसी तरह चलना भी हमें कोशिश करके ही सीखना पड़ता है और इस सीखने के दौरान हम बचपन में कई बार गिरते हैं, चोट खाते हैं। साईकिल चलाना, कपड़े पहनना, जूते पहनना भी अपने आप नहीं आ जाता है। तो अगर मान लिया जाए कि कविता सिर्फ छंद रचना का नाम है तो भी छंद का अभ्यास करना तो आना ही चाहिए। और जो मानते हैं कि आजकल कविता में छंद इत्यादि की अनिवार्य नहीं है -और वे सही मानते हैं-तो भी किसी चीज की तो जरूरत होती ही है वरना क्यों छंद का बंधन न होने के बावजूद हर कवि निराला, मुक्तिबोध आदि नहीं हो जाता? इसलिए इतना तो मानिए कि कविता लिखना है तो अन्य विषयों के साथ कविताएँ पढ़नी भी होंगी।

'और एक कवि की नहीं पचासों कवियों की कविताएँ पढ़नी होंगी। तभी तो कुछ-कुछ समझ में आएगा कि कविता आखिर होती क्या है और क्या नहीं होती है! बाकी आप अभ्यास से, जीवन के पर्यवेक्षण से सीखेंगे। बहरहाल मेरी समझाइश का कोई खास असर होता दिखता नहीं। ऐसे नवोदित कवि कहीं और 'ट्राय' मारते हैं और वसुंधरा चूँकि विपुला है तो कहीं-न-कहीं, कोई-न-कोई इन्हें 'सहृदय' भी मिल ही जाता है, जो भले ही उनसे पैसे लेकर मगर इनकी कविता छाप देता है। छात्र-जीवन से लेकर अब तक कभी-कभी ऐसे पत्र मेरे पास भी आते रहे हैं कि इतने रुपए दीजिए और फलाँ कविता-संकलन में अपनी कविता को छपा हुआ देखिए और अपने लिखे को पहली बार छपा हुआ देखने का तो अलग ही रोमांच होता है!

'संपादक नामक प्राणी का ऐसे कवियों से रोज नहीं तो हफ्ते-दस दिन में सामना होता ही है। एक कवयित्रीजी का फोन था कि आपने तो इस बार भी मेरी कविता पसंद नहीं की, इस बार तो मैंने कम पंक्तियों की कविता ही भेजी थी। यह समझाना उन्हें मुश्किल था कि बहनजी, सवाल सिर्फ लंबाई-छोटाई का नहीं है, सवाल उन पंक्तियों के कविता होने का है और अगर आपकी दिलचस्पी वाकई कविता लिखने में है तो कृपया कविताएँ गंभीरता से पढ़िए भी तो! लेकिन कविताएँ पढ़ने की बात जब भी मैंने किसी नवोदित कवि से कही है तो अक्सर उसने यह नहीं कहा है कि पढ़ूँगा बल्कि एक गहरी निःश्वास छोड़ी है कि ये क्या फालतू का काम बता दिया आपने!

'अगर आपको नहीं छापना है तो मत छापिए मगर फालतू का ये काम तो हमें मत बताइए! और कोई काम नहीं है क्या हमारे पास, कि कविता लिखने के लिए भी हमें कविताएँ पढ़नी होंगी? पढ़कर ही लिखना होता तो क्या हम कविता लिखते? और जब हम बिना पढ़े ही कविता लिख लेते हैं तो फिर पढ़ें क्यों? पागल कुत्ते ने काटा है क्या हमें?

'सच बात यह है कि पूरे हिंदीभाषी समाज में पढ़ना दरअसल बहुत कम लोग पसंद करते हैं। यह हमारे अध्यापन के तौर-तरीके की कमी है या क्या है कि छात्र-जीवन से ही पढ़ने में अक्सर अरुचि होती है। ऐसे में वयस्क होने पर ज्यादातर लोग जैसे-तैसे अखबार पलट लेते हैं, यही क्या उनकी कम कृपा मानी जाए? इसलिए हमारे महत्वाकांक्षी युवा साथी भी अक्सर नहीं पढ़ते।

'यहाँ तक कि जिस पत्र-पत्रिका में कविता भेजते हैं, मैंने कई बार पाया है कि उसे भी वे नहीं पढ़ते। बस उन्हें इतना पता होता है कि ऐसी कोई पत्र-पत्रिका है, जहाँ कविताएँ छपती हैं। और मान लो आपकी पत्र-पत्रिका में छपी कोई कविता उन्होंने पढ़ भी ली तो यही कहेंगे कि सर, इसी तरह की कविताएँ तो आप छापते हैं, फिर मेरी क्यों नहीं छापते? मेरी कविता उससे किसी भी मायने में कम नहीं है। अब ऐसे आत्ममुग्ध, उत्साही युवाओं को समझाना क्या आसान है? बहरहाल, मैं उनसे इतना ही कह पाता हूँ कि भाई साहब या बहनजी आपके दिल में भाव उठते हैं तो उन्हें जरूर लिखिए। लिखने पर न कोई प्रतिबंध है, न हो सकता है। फिर इच्छा हो तो लिखकर अपने मित्रों-सुहृदों को भी सुना दीजिए, शायद इस लिहाज में वे सुन लेंगे कि आपका उनसे कोई व्यक्तिगत रिश्ता है लेकिन दूसरे आपको पढ़ें, इसका कोई कारण तो होना चाहिए?

'वैसे सच यह भी है कि पत्र-पत्रिकाओं में छपी कविता या कविताएँ कितने लोग पढ़ते हैं? शायद एक या दो प्रतिशत ऐसे पाठक होते होंगे लेकिन जितने भी पाठक पढ़ते हैं वे इस आशा में पढ़ते हैं कि उन्हें जीवन के किसी नए अनुभव या किसी नए कविता-कौशल का पता चलेगा। जो कुछ नहीं पढ़ते मगर सिर्फ कविता लिखते हैं और समझते हैं कि उन्होंने बड़ा भारी किला फतह कर लिया है, उनके पास कहने के लिए दरअसल कुछ होता नहीं है। भले ही वे भ्रम में रहते हैं कि उन्होंने दिल की गहराइयों से बड़े सरल-सादा शब्दों में बहुत बड़ी बात कह दी है, जिसे जो पढ़ेगा, वही सराहेगा।'

सुभदा बाजपेयी

दौलत का जखीरा हो ये अरमान नहीं है।
दौलत के बिना जीना भी आसान नहीं है।

दिल पर हैं मिरे उसकी हुकूमत के ही चर्चे,
ये बात अलग है कि वो सुलतान नहीं है।

मरना हो तो मरने पे मेरे आह करें लोग,
मौका वो गँवा दूँ, ये मेरी शान नहीं है।

डूबी जो मिरी नाव तो डूबी है ये कैसे,
सागर में तो कहने को भी तूफान नहीं है।

आता है हुनर संग तराशी का सभी को
पत्थर हैं यहा कोई भी इंसान नहीं है।

पहरे हों भले लाख जमाने के ए 'शुभदा'
प्यासी मैं मरूं इसका भी इम्कान नहीं है

(संपर्क - 9911917626)

क्या करें अब हम
मंजूषा मन

चित्त चिंता में घिरा है क्या करें अब हम।
दर्द जो घेरे हमें वो किस तरह हो कम।

चाँद से कहने गए वो भी अमावस में मिला,
सूर्य खुद ही जल रहा है क्या करें उससे गिला।
थक गए सारे सितारे
टिमटिमा हर दम।

साथ जो साथी चले वो साथ दे पाते नहीं,
चैन दिल को मिल न पाए जाएं हम चाहे कहीं,
रो रही मन में रुदाली
कर रही मातम।

जुगनुओं जैसे बनें हम, आग में अपनी जलें,
हौसलों की नाव ले कर धार के सँग बह चलें।
हो स्वयं का जब सहारा
हो न कोई गम।

(संपर्क - 9826812299)

औरत
सपना मांगलिक

आयशा
वो कहते हैं कि औरत
कभी हो नहीं सकती बच्ची
अरे वो तो महज एक
जमीन है कच्ची
जिसपे जो चाहे ,जब चाहे
जोते हल,
और चुक जाए तो दे दे
अन्य किसी मेहनतकश को लीज पर
या उगाता जाए फसल पर फसल

वो साठ की उम्र में भी पुरुष
तू छः की नन्ही सी उम्र में भी औरत
तू नहा धोकर भी रस्ते की खाक, नापाक
वो तेरे जिस्म से बुजु कर भी कहलाता है पाक
वो पढ़ेगा अपने फायदे के लिए आयतें
मगर तुझको ताउम्र करनी है
इस जल्लाद की इबादतें
उसके लिए बख्शी जाएंगी बहत्तर हूर
छीन लिए जाएंगे तुझसे
तमाम सपने, हसरतें और नूर
वो ढांप देगा तेरी पहचान स्याह हिजाब के पीछे
छुपायेगा वहशियत अपनी
एक किताब के नीचे
कर तुझे हलाला कभी सुनाकर तलाक
भोगेंगे हर तरह से जिस्म तेरा
अल्लाह के ये बन्दे चालाक
बहुत हुआ आयशा तू बढ़ आगे
रौंद डाल इस गुनहगार मरद जात को
थाम ले हाथ में कलम और किताब को
छोड़ इन झूठे सभी रस्म ओ रिवाज को
खौफजदा करती जेहादी आवाज को
देख वो आफताब जो तेरा भी है
तेरी है शब, तेरा सवेरा भी है
नहीं गर्दिश , सितारे सारे आसमान हैं

जीती जागती हाँ तू भी इंसान है
तुझसे ही जहां यह, तू ही जहान है
तेरी भी एक अलग, खुद की पहचान है।
तू बेजान नहीं आयशा
नहीं, नहीं, नहीं
धड़कता है एक दिल तुझमे भी,
बसती तुझमें भी जान है।

(संपर्क - 9548509508)

मन की सैर
कविता नागर

भावी जीवन की आस में, क्यों धूमिल हो हमारा आज।
मैं पैरों में घुंघरू बांधू, तुम छेड़ो ना कोई साज।

कितने दिनों में मिली है फुर्सत जीवन की आपाधापी से,
तुम भी जी लो, मैं भी जी लूं, कुछ लम्हें चुराकर ले आए,
तुम दूर क्षितिज पर खड़े रहो, मैं धानी चुनर ओढ़कर आऊं,
फिर वहीं बनाए एक शामियाना, हम दोनों वहां पर बतियाएं,
हम सब से यूं ओझल हो..कि कोई हमें न ढूंढ पाए,
सूरज की किरणों को छान छान, मैं थोड़ा तुझपर आने दूं,
इस हवा को बोलो धीरे चले, मैं अपना आंचल लहराने दूं,
फिर रातों को जब चंद्रमा निकले, तुम चांदनी भरकर ले आना,
जितनी भी शीतलता होगी, उससे मन को तुम नहलाना।

एक दूजे के दिल को झंकृत करते हैं, जो तेरे मेरे मन के तार,
बज उठता जीवन संगीत, बाधाओं की होती हार,
आओ चले, कहीं दूर एक उपवन में, मधुगंधों को चुरा लाते हैं,
ऐसी ही कुछ मधुगंधों को,मन में अपने भर लेते हैं,
जाकर के निर्झर के नीचे, अपनी दुश्चिताएं बहा आए,
लेकर के वृक्षों की छांव, थोड़ा फिर हम सुस्ताएं,

आओ, चलो ना स्वांग करें, हम कोई चंद्र चकोरी जैसे,
बना रहे चिरकालिक जोड़ा, हो कोई हंस हंसिनी जैसे,
खुद को खोकर क्यूं डालें हम सुखद भविष्य की नींव,
पहले खुद को पहचानें, फिर होगी संभावनाएं सजीव,
तुम्हारे संग तो मेरे साथी, हर पल है मधुमास,
मेरे रोम रोम से, निकले अब प्रेम का उच्छ्वास।

(संपर्क - 7415581079)

अश्क
विनीता चैल

अश्क बहे दो नयनों से
मन की पीड़ा बयां करने को
मन मैल धूल जाए रे सखी
अश्रु भरे नयनों के जल से।

धूल जाने दो दिल अरमां
आंसुओं की धारा बनके
बह जाने दो मन का मैल
रे सखी तुम्हारे अपने अश्रु जल से।

आंसू तो है आँख का मोती
दिल का दर्द बयां करता है
अश्रु और नैनों की जोड़ी
दोनों हैं सुख -दुःख की सहेली।

सुख में छलके खुशी के आंसू
दुःख में बहे पीड़ा की अश्रु धार
कभी बहे नैनों से ममता के आंसू
तो कभी बहे बिछोह के अश्क की धार।

आंसू दिखाते मन की व्यथा
आंसू सुनाते जीवन की कथा
आंसू तो है अनमोल मोती
क्यों बहाते हो रे मन इसे वृथा?

(संपर्क - 8789418525)

बदलने लगी हूं मैं
सुषमा मलिक

हां, बस अब थोड़ा सा बदलने लगी हूं मैं।
खुद से ही खुद के सांचे में ढलने लगी हूं मैं।

अपनेपन के झूठे एहसास से बुझा दिया,
था मुझे उसने राख की मानिंद,
पर अब फिर से अपने
कर्मपथ पर ज्वाला सी जलने लगी हूं मैं।

मेरी हर आस, हर उम्मीद को उसने अपने
कदमों तले कुचल सा दिया,
ठोकर इतनी जबरदस्त लगी कि
पथरीले रास्तों पर हंसकर चलने लगी हूं मैं।

उन चंद लोगों के इशारों तक रह गई हैं
जिन महफिलों की रौनकें,
उन महफिलों को 'मलिक'
बहुत दूर से ही सलाम अब करने लगी हूँ मैं।

उतारकर पागलपन उसकी मोह-माया का
देख 'सुषमा' उस हद वाला
खुद से ही वो प्यार अब करने लगी हूं मैं।

(संपर्क - 9813434791)

ब्रह्माण्ड के देवता

दीपिका सिंह

है एक समय की बात
दिन था सुखद, थी शान्त रात
अचानक आकाश हुआ स्याह
घिर आए काले मेघ
गया सारा ब्रह्माण्ड थर्रा
हुआ मौत का ताण्डव
राक्षसों, पिशाचों के हुए अत्याचार
धरती हो गई नीरव
देवतागण हुए परेशान
मिल न सका उन्हें तनिक समाधान।

तब ईश्वर ने कुछ सोचा
तेजवान वीर सूर्यदेव को खोजा
है यही एक ऐसा वीर
जो कर देता बर्फ को नीर
मर्त्य को जीवन देता
देता अन्धकार को चीर

सूर्यदेव ने ब्रह्माण्ड को अत्याचार मुक्त करने की ठानी
उनके रहते नहीं कर सकता कोई मनमानी
तब आए गुरू बृहस्पति
मुनियों में श्रेष्ठ विज्ञानी
थी मिली उन्हें दिव्य दृष्टि
देते पल पल के खबरों की वृत्ति
आजीवन सेवा, अविवाहित रहने का संकल्प लिया
तब सौन्दर्य की देवी शुक्रा ने मूर्त रूप लिया

आए जलदेव वरुण
अग्निदेव अरुण
बुद्धिदेव बुद्ध ने भी भरपूर साथ दिया
समृद्धि देव यम ने भी गम्भीरता भाँप लिया

अन्त में आए शनिदेव
अच्छे बुरे का रख ध्यान
बुरे को करते दण्डित स्वयमेव
सभी साथियों को ले
सूर्यदेव संघर्ष को चल पड़े
तभी देवगुरु ने आगाह किया
बिना शक्ति किसी ने युद्ध विजय नहीं किया
यदि हम युद्ध में हारे
जाएँगे समूल मारे
होगा देवों का अस्तित्व खतम
जिसने यह महान कार्य सौंपा
उस परमपिता को भी होगा भ्रम
सूर्यदेव ने कई दिनों तक सोच विचार किया
अपने अंग से शक्ति को अवतरित किया
जो न थी केवल सूर्यदेव की अर्धांगिनी

बल्कि जीवन पल्लवन की अधिकारिणी
था नाम उनका पृथ्वी
जो सूर्य समान ज्वालाओं से तपती
अग्नि के रहते जीवन सम्भव न था
देवी पृथ्वी को और कोई अवलम्बन न था

जल देवता का कर आह्वान
सूर्यदेव ने कहा -
पृथ्वी को शीतल बनाने का करें जतन
गए कई वर्ष बीत
गुँजा पृथ्वी पर जीवन का उद्गीत
हुआ जन्म मंगल का
जो वर्ण में पिता तुल्य रक्तिम आभा
माता पृथ्वी समान पुंज जीवन का
देवगुरू की इच्छा पूर्ण हुई
देव-दानवों की लड़ाई भीषण हुई
चहु ओर त्राहि-त्राहि मची
पर जीत अन्ततः सत्य की हुई

दानव भाग खड़े हुए
विश्व विजय के सपने उनके चूर हुए
भूले लोग पुराने दुख
हुए देवतागण भी खुश
इस तरह बीते कई वर्ष, कई रात्रि
सुख के दिन युगों की भाँति
धीरे धीरे देवताओं की विलासिता सूझने लगी
सूर्यदेव को युद्ध में जो विजय मिली
वही उनके अहंकार का मूल बनी
मित्र देवताओं का भी उन्होंने किया अपमान

अपने कर्तव्यों का रहा न ध्यान
यह थी उनके अहं की पराकाष्ठा
पुत्र मंगल की कम हुई उनमें आस्था
देवी पृथ्वी ने बार बार समझाया
पर भूले पथिक को यह रास्ता न भाया
देवगुरू ने सूर्यदेव को शाप दिया
क्रोध में उन्हें न क्षमा किया
जा इस घमण्ड के तेज से तेरी प्राणप्रिया है छूटी
तेरे अपने भी दूर हुए, तेरी सारी उम्मीदें टूटी
अब तुझे अपनों की अवहेलना का दर्द पता चलेगा
अपने घमण्ड के तेज से तू स्वयं जलेगा

सूर्यदेव के तेज ने प्रचण्ड अग्नि का रूप लिया
स्वयं तो जले औरों को भी उनसे दूर किया
देवी पृथ्वी उनके सामीप्य से जलने लगती
सूर्यदेव को सम-हजय में आई अपनी गलती
देवगुरू के पास जा किया क्षमा याचन
पर देवगुरू का क्रोध न हुआ जरा भी कम
तब शीश नवा सूर्यदेव ने कहा
गुरू! मैं अपने मद में चूर रहा

जबतक मैं साधन सम्पन्न रहा
अपने कर्तव्यों का ध्यान भी नहीं रहा
मैं देवों का देव बना
था यही कारण कि मैं निरंकुश हुआ
रही ये मेरी गलती रहा ये मेरा पाप
मेरी प्रिये को क्यूँ दण्ड दे रहे आप

मैं ठहरा अज्ञानी
निरा तुच्छ अभिमानी
मुझे क्षमा करें हे गुरुवर
आप क्यों नहीं देते कोई उत्तर
देवगुरु ने सूर्यदेव पर एक दृष्टि डाली
कहा, मेरा शाप न जाएगा खाली
आपका तेज देवी पृथ्वी को भस्म नहीं करेगा
जबतक यह ओजोन चादर उनके पास रहेगी
आपकी ज्वाला आपको विदग्ध करती रहेगी
इससे गलतियों की वृत्ति न फिर से होगी
परमपिता का महत उद्देश्य न भूलना है
अपने पथ पर अडिग रहना है
पाप कभी भी अपना विस्तार कर सकता है
सत्य का तेज धूमिल हो सकता है
अगर देवता ही विलासी हो जायेंगे
दुष्ट अपना साम्राज्य फिर से फैलायेंगे
हमे इस ब्रह्माण्ड को बचाना है
जीवन को सहज बनाना है
है यही समय की मांग
निकले अवचेतन से चेतन का राग।

(संपर्क - 9473782919)

डॉ पुष्पलता कुमार

मैं औरत हूँ मुझको ये दोजख मिला है।
जो दागी है दागे, वो शौहर मिला है।

मैं इक गोश्त, मुझको चबाते हो कच्चा
जो खामोश चबती बताते हो अच्छा
यूँ भोजन पकाने का अवसर मिला है।

जनक भी मिले हैं मुझे दोगले से
मेरी देह मुंजी हैं घर ओखले से
किया जो समर्पण तो बिस्तर मिला है

न रोने का हक, न बताने का हक है
मुझे हाँ में हाँ बस मिलाने का हक है
कि खुद को डुबा लूँ वो पोखर मिला है।

जो बनती हूँ धरती तो सूरज ही खाले
जो गंगा बनूँ तो निगल जाएँ नाले
यूँ पानी को छाती पे पत्थर मिला है।

मैं पाँवों में जंजीर लेकर बढ़ी हूँ
लिए ह०सला कितने पर्वत चढ़ी हूँ
मुझे चंद्रमा पर मेरा पर मिला है।

बिलखती सदी हूँ या इक इम्तहाँ हूँ
मैं दिखती हूँ जिन्दा कि जिन्दा कहाँ हूँ
तुम्हें जिन्दगी दूँ वो अमृत मिला है।

बना लाश मुझको करें मुझपे घातें
नहीं भेज पाती वें चीखों की रातें
तू जिन्दा या मुर्दा नहीं, खत मिला है।

ओ जागो, उठो शिव अगन नेत्र वाले
जलाने लगे हैं मुझे ये शिवाले
मेरे घर में जलता ये आगत मिला है।

अंधेरे किलों में मैं बंदी बनी हूँ
हूँ सीता, जो कहते हैं.... बनी हूँ
कहाँ रोशनी का तथागत मिला है।

बीइंग वूमेन 'स्वयं सिद्धा सम्मान' समारोह

• राष्ट्रीय स्वयं सिद्धा शिक्षा सम्मान

• अंतराष्ट्रीय स्वयं सिद्धा सृजन सम्मान

• राष्ट्रीय स्वयं सिद्धा सृजन सम्मान

• स्वयं सिद्धा गीत गायिकी सम्मान

बीइंग वुमन 'स्वयं सिद्धा देवभूमि सम्मान'-2018

अंदर वाला बचपन

डॉ संगीता गांधी

यूं ही बहुत भीड़ वाले अकेलेपन के बीच
आँखों के कोनों पर उमड़ी लकीरों पर,
लुढ़कते हुए चश्मे को खींच
कुछ ठहरे कुछ भागते कदमों के साथ,
थके-थके से जीवन को पकड़ने की चाह में,
पहुँची कुछ युग पुराने मकान की थाह में!

बन्द किवाड़ के साँकल को छूते ही,
गुड़िया से खेलती एक लड़की मिली
मैं स्वयं की उस परछाईं को देख
कुछ चकित, कुछ मुस्काई
पर भीतर ही भीतर
फिर से 'लड़की बन गुड़िया से खेलने'
की चाह पर बहुत शरमाई,
सुनो ! कभी आओ तो,
एक गुड़िया लेते आना।

(संपर्क - 9213835906)

11 अप्रैल, फणीश्वर नाथ 'रेणु' की पुण्यतिथि पर विशेष

फिल्मी गीतों ने गढ़ा हिंदी भाषा का नया रूप-रंग, सांचा-ढांचा

हिंदी साहित्य और भाषा पर हिंदी फिल्मी गीतों का गहरा प्रभाव पड़ा है। हिंदी फिल्मी गीतों ने हिंदी भाषा के सर्वथा नए रूप रंग, और सांचेझ्रढांचे को गढ़ा है। हिंदी के आलोचना शास्त्र के लिए कई नए मानक प्रदान किए हैं। इन मानकों को नयी विधाओं के रूप में तथा दृश्यता, मित कथन, संवादधर्मिता आदि कई रूपों में चिन्हित किया जा सकता है।

सुरेश कुमार मिश्रा

भाषा-प्रसार उसके प्रयोक्ता-समूह की संस्कृति और जातीय प्रश्नों को साथ लेकर चला करता है। भारतीय हिंदी सिनेमा गीत निश्चय ही हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार में अपनी विश्वव्यापी भूमिका का निर्वाह कर रहा है। उसकी यह प्रक्रिया अत्यंत सहज, बोधगम्य, रोचक, संप्रेषणीय और ग्रा' है। हिन्दी यहाँ भाषा, साहित्य और जाति तीनों अर्थों में ली जा सकती है। जब हम भारतीय सिनेमा पर दृष्टिपात करते हैं तो भाषा का प्रचार-प्रसार, साहित्यिक कृतियों का फिल्मी रूपांतरण, हिंदी गीतों की लोकप्रियता, हिन्दी की उपभाषाओं, बोलियों का सिनेमा और सांस्कृतिक एवं जातीय प्रश्नों को उभारने में भारतीय फिल्मी गीतों का योगदान, जैसे मुद्दे महत्वपूर्ण ढंग से सामने आते हैं। हिन्दी भाषा की संचारात्मकता, शैली, वैज्ञानिक अध्ययन, जन संप्रेषणीयता, पटकथात्मकता के निर्माण, संवाद लेखन, दृश्यात्मकता, दृश्य-भाषा, कोड निर्माण, संक्षिप्त कथन, बिम्ब धर्मिता, प्रतीकात्मकता, भाषा-दृश्य की अनुपातिकता आदि मानकों को भारतीय सिनेमा गीतों ने गढ़ा है। भारतीय सिनेमा गीत हिन्दी भाषा, साहित्य और संस्कृति का लोकदूत बनकर अग्रसर हैं।

गीत एक ऐसे कला माध्यम के रूप में हमारे सामने उपस्थित है, जिसमें अनेक कलाओं का पड़ाव दिखाई देता है। भाषाई और रूपकर कलाएँ तो फिल्मी गीत में हमेशा ही अपना दखल रखती आयी हैं, परंतु साहित्यिक कृतियों के सिनेमाई रूपांतरण, सिनेमा में बोलियों और आंचलिकता की अनुगूँज, गीतों का निर्माण एवं प्रसार, भाषाझ्रभाषी समाज की कलात्मक अभिरुचि एवं कला मानकों का विकास, सांस्कृतिक रंगों, ध्वनियों की उद्भावना और संदेश

संप्रेषण, शिक्षण प्रक्रिया द्वारा भाषा, साहित्य और संस्कृति का गठन फिल्मी गीतों का महत्वपूर्ण अवदान माना जा सकता है। हिन्दी फिल्मी गीत भी अपनी इस भूमिका में पीछे नहीं हैं। हिन्दी भाषा (दुनिया की तीसरी सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा ही नहीं, अपितु हिन्दी जाति; जो मूलतः भारत के उत्तरी क्षेत्रों में है) जीवन के सरोकारों, स्पंदन, भावात्मक संचार, आर्थिक स्थिति एवं वैचारिक बनावट को दशार्ती है। बॉलीवुड, जहाँ हिंदी फिल्मी गीतों में का औद्योगिक निर्माण होता है, हिंदी गानों का क्षेत्रीय सीमाओं, भौगोलिकों बाध्यताओं एवं भाषाई घेरेबंदी को चटखा देता है। हिंदी गानों के निर्माण व वितरण में हिंदीतर भाषाझभाषी लोगों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। गीत निर्माण एक सामूहिक कार्य है, इसलिए हिंदी गीत भारत और कई बार भारत के बाहर से भी मानव संसाधनों का उपयोग करते हैं। इसके चलते हिंदी गीतों की कुशलता, प्रभावोत्पादकता काफी बढ़ जाती है। अभिप्राय यह कि हिंदी फिल्मी गीत भारतीय विविधता में एकता के सूत्र विकसित करते हैं। विभिन्न भाषाई भौगोलिक समूहों को इकट्ठा करके उनमें आपसी समन्वय स्थापित करते हैं। इस प्रकार हिंदी गीत अन्य क्षेत्रीय भाषाओं बंगला, तमिल, कन्नड़ आदि की तुलना में अधिक विस्तृत लक्ष्य को प्रस्तावित करते हैं। जहाँ हम बाकियों को क्षेत्रीय सिनेमा कह सकते हैं, वहीं अपनी निर्माण प्रक्रिया और उद्यमी चरित्र के चलते तथा समस्त भारतीय प्रतिनिधित्व (अभिनय, संगीत, तकनीक, संपादन, वितरण) के समाहार होने के कारण हिंदी फिल्मी गीत को राष्ट्रीय; न कि केवल उत्तर भारतीय सिनेमा गीत कहना पड़ेगा। हिंदी फिल्मी गीतों को राष्ट्रीय सिनेमा गीत कहना सर्वथा समीचीन भी है क्योंकि इन फिल्मी गीतों के दर्शक भारतीय भूखंड के हर हिस्से में मौजूद हैं। वे लोग भी, जिन्हें न तो ठीक से हिंदी लिखनी, पढ़नी, बोलनी आती है। वे भी हिंदी फिल्मी गीत सुनते और देखते हैं और उसका संदेश ग्रहण करने में सक्षम होते हैं। साथ ही, हिंदी फिल्मी गीत राष्ट्रीय विमर्श के मुद्दों को लगातार गंभीरता और सहजता से उठाते हैं। भारत की राष्ट्रीय संस्कृति, सामाजिक परिवर्तन राजनीतिक घटनाचक्र का बैरोमीटर बनकर हिंदी फिल्मी गीत भारतीय राष्ट्र की मुख्य चिंताधरा का उद्घाटन करते हैं। अपने इन्हीं गुणों के चलते हिंदी फिल्मी गीतों को सच्चे अर्थों में भारत के राष्ट्रीय सिनेमा गीत से अभिहित किया जाता रहा है। फिर भी, अपनी भाषाई बनावट के चलते हिंदी फिल्मी गीत हिंदी भाषी समूहों में सर्वाधिक लोकप्रिय हैं।

भाषा प्रसार उसके प्रयोक्ताझसमूह के संस्कृति और जातीय प्रश्नों को साथ लेकर चला करता है। हिन्दी फिल्मी गाने निश्चय ही हिन्दी भाषा के प्रचारझ प्रसार में अपनी विश्वव्यापी भूमिका का निर्वाह कर रहे हैं। उनकी यह प्रक्रिया अत्यंत सहज, बोधगम्य, रोचक, संप्रेषणीय और ग्रा' है। प्रचारझप्रसार के माध्यम के रूप में जब हम हिन्दी फिल्मी गीतों पर दृष्टिपात करते हैं तो कई महत्वपूर्ण मुद्दे उभरते हैं। मसलन, भाषा का प्रचारझप्रसार, साहित्यिक कृतियों का फिल्मी गीतों में रुपांतरण, फिल्मी गीतों की लोकप्रियता, हिन्दी की उपभाषाओं, बोलियों के सिने गीत, कलात्मक आलोचनाशास्त्र का निर्माण और सांस्कृतिक एवं जातीय प्रश्नों को उभारने में हिंदी फिल्मी गीतों का योगदान।

हिन्दी फिल्मी गीतों में ध्वनि का आगमन हालांकि 1931 (आलम आरा) में होता है परंतु 1913 में ही दादा साहब फाल्के की फिल्म 'राजा हरिश्चंद्र' (भारत की पहली फीचर फिल्म) में उपशीर्षकों की भाषा हिन्दी की उस विशिष्ट शैली (जो आज बोलचाल में प्रयोग होती है तथा जिसके विश्वस्तर पर पनपने की संभावना है, जिसे संयुक्त राष्ट्र संघ में भी स्वीकृत कराया जा सकता है) के दर्शन होते हैं, जो बाद में हिन्दी भाषी समूहों में लोकप्रिय होती चली गई। इस फिल्म के शीर्षकों को देखें तो हम पाते हैं कि इसमें लगभग 95 शब्दों का प्रयोग हुआ है। उनमें से आठ उर्दू में हैं, बाकी संस्कृत और हिन्दी के हैं। 'साड़गता' शब्द मराठी भाषा का है। एकझदो शब्दों में वर्तनी की अशुद्धता भी है। पहली फिल्म में ही भाषा की व्यापकता हमें दीखती है। हिंदी फिल्मी गीतों ने हिन्दी की ऐसी भाषाझशैली विकसित करने और उसे गैर हिन्दी भाषी क्षेत्रों, भारतेतर समूहों में प्रचलित करने में मदद की, जो आज हर जबान से फूटती है।

हिंदी फिल्मी गीतों की भाषा को लेकर भी भ्रम पैदा किया जाता रहा है। अपने हाल के ही एक लेख में प्रो. हरीश त्रिवेदी ने इस भ्रम का तर्कसंगत निराकरण किया है कि हिंदी फिल्मी गीतों की वास्तविक भाषा उर्दू है। फिल्मी गीतों के नामकरण, संवाद, लेखन और गीतों के विश्लेषण से कुछ फिल्म विचारकों ने सिद्ध किया था कि हिंदी फिल्मी गीतों को कायदे से उर्दू का कहा जाना चाहिए लेकिन न तो नामकरण और न ही संवादों के आधार पर यह सिद्ध किया जा सकता है कि हिंदी फिल्मी गीतों में उर्दू का वर्चस्व है। गीतों में अवश्य ही उर्दू शब्दों की प्रचुरता दिखाई देती है लेकिन इस उर्दू को हिंदी के निकट कहा जा सकता है।

फिल्मी गीत भाषाई प्रचार को गति कैसे देते हैं? इस प्रश्न का उत्तर साफ है कि फिल्मी गीत मात्र मौखिक भाषा का ही आलंबन नहीं ग्रहण करते वरन् मौखिक भाषाओं के साथ दृश्य भाषा पूरक के रूप में साथझसाथ चला करते हैं। हिंदी फिल्मी गीतों ने भी बड़े अनुभवों के बाद अपनी दृश्य भाषा का निर्माण एवं गठन सुनिश्चित किया है। हम अपनी आम बातचीत के दौरान भी दृश्य भाषा का प्रयोग करते हैं। मसलन, यहां या वहां बैठने के लिए तर्जनी के संकेत। 'यहां' के लिए तर्जनी के साथ अन्य अंगुलियां भी साथ जुड़ी होती हैं जबकि 'वहाँ' के संकेत में वह अकेली और तनी हुई होती है। यदि संदर्भ बैठने (स्वागतोपरांत आदि) का हो तो हम किसी भी भाषा में बोलते हुए इस तरह की देह भाषा का प्रयोग करते हैं। मौखिक भाषा को न जानने वाला या कम जानने वाला व्यक्ति संकेतों को ग्रहण करते हुए भाषाई आरोह और अवरोह के आधार पर पूरा अर्थ समझ जाता है।

फिल्मी गीतों में दृश्य की ताकत मौखिक भाषा

की बाधाओं को दूर कर उसे अधिक संप्रेषणीय बना देती है। इसलिए वे निभाषी समूहों तक अपने अर्थ का प्रकाशन संभव कर पाते हैं। हिंदी फिल्मी गीतों की दृश्यता हिंदी भाषा के अर्थ-प्रसार में सहायक रही है। भारत में प्रतीकों की प्रचुरता और प्राचीनता अर्थ संप्रेषणीयता में कारगर सिद्ध हुई है। इन प्रतीकों में उदाहरणतः 'शिवलिंग' या 'बांसुरी' की बर्तनियाँ, भिन्न होने के बावजूद उन्हें पूरे भारत के लोग ग्रहण कर लेते हैं। हिंदी फिल्मी गीतों ने इस प्रतीकात्मकता को अपनाकर अपनी संप्रेषणीयता गैर हिंदी भाषी क्षेत्रों में सुनिश्चित की है। दृश्य भाषा के विकास और प्रतीकात्मकता बुनावट के सहारे हिंदी, हिंदी फिल्मी गीत के माध्यम से उन जनसमूहों में समादृत और लोकप्रिय हुई, जो किसी अन्य माध्यम से संभव न थी।

हिन्दी फिल्मी गीतों ने हिन्दी साहित्य को भी आम लोगों (वे लोग भी, जो निरक्षर हैं या फिर हिन्दी पढ़ नहीं सकते झ या पढ़ना नहीं चाहते, देशीझविदेशी दोनों) तक पहुँचाने में सफलता अर्जित की है। हिंदी साहित्य का व्यापक प्रसार पूरे विश्व में फिल्मी गीतों के जरिए हुआ है। साहित्यिक कृतियों का सिनेमाई रूपांतरण साहित्य को नई संचारात्मक और संप्रेषण शक्ति प्रदान कर देता है। निरक्षर लोग और गैर भाषाई लोगों तक भी साहित्य की पहुँच इसके फलस्वरूप हो जाती है। हम पाते हैं कि साहित्यझसंरचना का मूलाधर भाषा है जबकि वहीं साहित्य जब फिल्मी पर्दे पर आता है तो दृश्य उसके केंद्र में होता है। भाषाओं का भूगोल सीमित और दृश्यों का व्यापक होता है। जरूरी नहीं कि दृश्य हमेशा असीमित भौगोलिक विस्तार को संबोधित करने की क्षमता रखते हों। इसे एक उदाहरण से समझा जा सकता है। अंडमान द्वीप के कई आदिवासियों ने अपने ऊपर से उड़ते हवाई जहाज को देखा तो उन्होंने इसे विराट पक्षी के रूप में परिकल्पित किया। दृश्य यथार्थ विम्बों के अभाव में अपना अर्थ संप्रेषण नहीं कर सकते हैं लेकिन भाषा की तुलना में वे अधिक संप्रेष्य कहे जा सकते हैं। पहाड़, पेड़, पक्षियों के दृश्य पूरी मानवता को संबोधित कर सकते हैं लेकिन हवाई जहाज सीमित लोगों की पहुँच के चलते सीमित लोगों तक ही अपने अर्थ का प्रतिपादन करने में सक्षम होते हैं। माथे की विंदी एक सांस्कृतिक प्रतीक होने के चलते भारत के विभिन्न भाषाझभाषी समूहों पर सहज ही अर्थ प्रकट कर सकती है परंतु पश्चिमी दुनिया के लिए उसका अर्थ व अभिप्राय लगाना कठिन होता है। संस्कृति विम्बों के द्वारा निर्मित होती है, भाषा उनकी सहायक होती है। हिंदी साहित्य की महान कृतियों का फिल्म विधा में रूपांतरण उनकी लोकप्रियता और पहुँच को सुनिश्चित करता है। 'तीसरी कसम' फणीश्वरनाथ रेणु की महत्वपूर्ण कहानी है। इसी पर बासु भट्टाचार्य ने जब फिल्म का निर्माण किया तो वह गैर हिंदी भाषियों के लिए भी सहजझसप्रेष्य हो उठी। उसमें गानों ने अतिरिक्त ऊर्जा का समावेश करा दिया और उनकी व्यापकता को सुनिश्चित कर दिया। अभिनय, संगीत, दृश्यांकन ने मिलकर इस कहानी का कायाकल्प कर दिया। कहानी में अनेक मार्मिक स्थल, स्टेशन पर हीरामन, हीराबाई का विछोह आदि भारतीय समाज के स्मृति पटल पर सदैव के लिए अंकित हो गए।

फिल्मी गीत अपनी संगीतात्मकता के चलते अधिक संचारात्मक प्रकृति के होते हैं। हिन्दी फिल्मी गीत उन लोगों की जबान भी चढ़े दिखाई देते हैं जिन्होंने हिन्दी को कभी व्यवस्थित ढंग से पढ़ा नहीं। इन गीतों के माध्यम से हिन्दी दुनिया के विभिन्न भागों तक पहुँची। गीत आसानी से हमारी स्मृति का अंग बन जाते हैं। इसलिए भाषाई प्रचारझप्रसार का सहज, दीर्घजीवी माध्यम बनते हैं। हिन्दी फिल्मी गीतों में भी यह गुण विशेषतौर पर मौजूद है। कोई भी समाज या राष्ट्र अपने गीतों के माध्यम से अपने हृदय को खोलता है। पहले इन गीतों पर एक दृष्टि डालते हैं - जब दिल ही टूट गया (1946, शाहजहाँ), वतन की राह में वतन के नौजवों (1948, शहीद), लारा लप्पा, लारा लप्पा (1949, एक थी लड़की), मेरे पिया गए रंगून, किया है (1949, पतंगा), तेरी दुनिया में दिल लगता नहीं (1950, बावरे नैन), तू गंगा की मौज, मैं जमुना का (1952, बैजूवावरा), दे दी हमें आजादी (1954, जागृति), मेरा जूता है जापानी (1955, श्री 420), डम डम डिगा डिगा, मौसम (1960, छलिया), इंसाफ की डगर पर (1961, गंगाझजमुना), मेरा रंग दे बसंती चोला (1965, शहीद), सजन रे झूठ मत बोलो (1966, तीसरी कसम), झूठ बोले कौवा काटे (1973, बॉबी), मैं तो आरती उतारूं रे (1975, जय संतोषी माँ), दीदी, तेरा देवर दीवाना (1990, हम आपके है कौन), ईलू ईलू (1990, सौदागर), कजरा रे कजरा रे (2005, बंटी और बबली), बीड़ी जलइले जिगर से पिया (2006,ओमकारा), मुन्नी बदनाम हुई (2010, दबंग), छम्मक छल्लो (2011, रावन), लूँगी डाँस लूँगी डाँस (2013, चेन्नई एक्सप्रेस), क्योंकि तुम ही हो (2014, आशिकी-2), जग घुमिया (2016, सुल्तान)।

ये गीत बदलते सामाजिक परिदृश्य के साथझ साथ अपनी लोकप्रियता का संकेत भी करते हैं। अपने संगीत-विधान, खूबसूरत शिल्प और संचारधर्मी तेवर के चलते ये गीत भाषाई समूहों के साथझसाथ विभाषाई जनों तक पहुँचे और उनका कण्ठहार बने। इन गीतों में निजी दर्द के साथ राष्ट्रीयता, अध्यात्मिकता, सामाजिक संबंध, जीवनझमृत्यु के प्रश्न, कॉमेडी आदि को सहज ही देखा जा सकता है। गीतों को जब संगीत का आलंबन मिलता है तो उनकी यात्रा लंबी हो जाती है। वे अपने इतिहास और भूगोल का अतिक्रमण करने की क्षमता अर्जित कर लेते हैं। हिंदी फिल्मी गीतों ने देश और विदेश की लंबी यात्राएं करने में सफलता पायी है। इनके माध्यम से हिंदी भाषा और संस्कृति भावपूर्ण प्रवाह के रूप में जनझजन तक पहुँची। आज हिन्दीझजनसंचार के जितने भी माध्यम हैं, उनमें हिंदी की उपभाषाओं/बोलियों का प्रयोग निरंतर क्षीण हुआ है। संभवतः यह माना जा चुका है कि बोलियाँ समूह के निजी संप्रेषण के लिए ही रह गई हैं लेकिन हिन्दी की बोलियों भोजपुरी, छत्तीसगढ़ी, गढ़वाली, राजस्थानी, बुंदेली, हरियाणवी, मैथिली में बनने वाली फिल्मों

के गीतों ने इन्हें नया जीवन प्रदान किया। हिन्दी की ये बोलियाँ फिल्मी गीतों के माध्यम से न केवल अपने अस्तित्व की रक्षा कर रही हैं बल्कि हिन्दी भाषा के वैविध्य को बचाए रखने, उसके शब्द भंडार में इजाफा करने और हिन्दी की व्यापकता के सुनिश्चय में लगी हुई हैं। हिंदी की उपभाषाओं में फिल्मी नजरिए से देखें तो भोजपुरी सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपभाषा के रूप में उभरी है। आजादी के पहले ही मोतीलाल बी.ए. ने 'नदिया के पार' फिल्म में भोजपुरी गीतों का समावेश करवा दिया था और फिर भोजपुरी भाषा संवादों और गीतों के मायम से हिंदी सिनेमा में लगातार बनी रही। भोजपुरी फिल्म का व्यवस्थित निर्माण 1962 में 'गंगा मइया तोहे पियरी चढ़इबे' में होता है। इसके बाद की अनेक महत्वपूर्ण फिल्में 'लागी नाही छूटे राम', 'कब होई हैं गवना हमार' आदि फिल्में आईं। भोजपुरी फिल्मी गीत न केवल भारत वरन मॉरीशस और त्रिनिडाड में भी लोकप्रिय हैं और इस प्रकार हिंदी भाषा के ही एक रूप का विस्तार कर रहे हैं।

मैथिली भाषा के फिल्मी गीतों के निर्माण का प्रयास 1964 में माना जा सकता है, जब ममता गाबय गीत, (निर्देशक परमानंद) को बनने का उद्यम हुआ। मैथिली फिल्मी गीत अपनी शैशवावस्था में हैं लेकिन कन्यादान (1964) और सस्ता जिनगी महंगा सिनुर (1999, बालकृष्ण झा निमार्ता) मैथिल भाषा में फिल्म निर्माण की संभावनाओं को रचते हैं। भक्ति और श्रृंगार के अनूठे कवि विद्यापति की भाषा फिल्मी पर्दे पर आकर अधिक लोकप्रिय व जन संप्रेषी हो सकी। हरियाणवी, राजस्थानी और छत्तीसगढ़ी सिनेमा भी प्रकारांतर से हिंदी के प्रचारझ प्रसार को ही सुनिश्चित कर रहे हैं। हरियाणवी सिनेमा की बहूरानी, सांझी, चंद्रावल, जर जोरू और जमीन जैसी लोकप्रिय फिल्मों के गीतों ने हरियाणा, उत्तर प्रदेश, राजस्थान और पंजाब के कुछ हिस्सों में अत्यंत लोकप्रियता अर्जित की है। सन् 2000 में प्रदर्शित लाडो को राष्ट्रीय पुरस्कार भी मिला। छत्तीसगढ़ी फिल्मी गीत के पितामह मनुनायक और किशोर साहू माने जाते हैं। छठवें दशक के अंतिम वर्षों में प्रदर्शित कवि देवे संदेश एक महत्वपूर्ण तथा पहली छत्तीसगढ़ी फिल्म कही जा सकती है। घरझद्वार, छइयाझभुइया, (निर्देशक सतीश जैन, 2000) एक महत्वपूर्ण छत्तीसगढ़ी फिल्म है जिसने अपने अंचल के बाहर भी व्यवसाय किया। भोला छत्तीस गढ़िया, मयाज भौजी और परदेसी के गया आदि फिल्मों के गीतों ने छत्तीसगढ़ी भाषा और संस्कृति को बल प्रदान किया है।

हिंदी बोलियों का सिनेमा अपने सीमित संसाधनों और तकनीकी अपरिपक्वता के चलते भले ही कोई राष्ट्रीय, अंतरराष्ट्रीय पहचान न बना पाया हो परंतु इन बोलियों की शक्ति को बचाए रखने की संभावना उसने जरूर दिखाई है। जरूरत है कि क्षेत्रीय बोलियों में अधिकाधिक सिनेमा बने जिससे हिंदी भाषा का वटवृक्ष और भी ऊर्जाझ स्रोत विकसित कर सके। बोलियों में बनने वाला सिनेमा अन्ततः हिंदी भाषा को ही समृद्ध करता है और राष्ट्रीय एकता को दृढ़ता प्रदान करता है। भाषा के भीतर संस्कृति का प्रच्छन्न प्रवाह बना रहता है। हिंदुस्तानी समाज के विभिन्न मुद्दे राष्ट्रीयता, आतंकवाद, सामाजिक ढाँचा, पारिवारिक रिश्ते, कृषि किसान, औद्योगिकीकरण, बाजारवाद और भूमंडलीकरण, प्रवासी जीवन आदि हिन्दी फिल्मी गीतों में में जीवंत हो रहे हैं। अपने कथानक की बनावट और भाषाई अभिव्यक्तियों में हिन्दी फिल्मी गीत इन मुद्दों के प्रति हमारा ध्यान आकर्षित करते रहे हैं। हिन्दी फिल्मी गीतों ने हिन्दी भाषा के प्रचारझ प्रसार के साथ हिन्दी भाषी समुदाय की चुनौतियों, संघर्षों, सपनों और चाहतों को भी विश्व फलक पर पहुँचाया है। हिन्दी भाषा का विश्वव्यापी प्रसार इस समुदाय के मुद्दों को संबोधित किए बिना अधूरा ही माना जाता है, लेकिन हिंदी फिल्मी गीतों ने अपनी इस भूमिका का बखूबी निर्वाह किया है।

दुनिया की कोई भाषा नए माहौल से अनुकूलन किए बिना जिंदा नहीं रह सकती। समाज में नयी हलचलों को पहचानने और उनके अभिलेखन के लिए भाषा को अपना ताना बाना बदलना पड़ता है। जब समाज और राष्ट्र नयी तकनीकी, कलात्मक, सांस्कृतिक जरूरतों की अपरिहार्यता से गुजरते हैं, तब सक्षम भाषाएँ उनका साथ देने के लिए अपने नए अवतार में उपस्थित हो जाती हैं। हिंदी भाषा भी नव्यतम चुनौतियों के वहन के लिए नयी विधाएं और नए रूप हमारे सामने आए हैं। हिंदी भाषा में फिल्म निर्माण के साथ हिंदी ने उर्दू को प्रमुख सहायिका बनाया, गीतों और संवादों के लिए, दृश्यता का समावेश किया, भाषा और बिम्ब के अन्तर संतुलन की पहचान की, नई तरह की शैलियों, मुबंइया को भी मानक बनाया, नए तरह के कोड, बिम्ब, प्रतीक, मितकथनों को ईजाद किया, पटकथा, संवाद और गीत लेखन जैसी नयी विधाओं का सृजन किया, हिंदी भाषा को तकनीकी अनुकूलन के लायक बनाया। इसलिए हिंदी फिल्मी गीतों ने हिंदी भाषा के सर्वथा नए रूप रंग, और सांचेझढांचे को गढ़ा है। हिंदी साहित्य और भाषा पर हिंदी फिल्मी गीतों का गहरा प्रभाव पड़ा है। हिंदी फिल्मों ने हिंदी के आलोचना शास्त्र के लिए कई नए मानक प्रदान किए हैं। इन मानकों को नयी विधाओं के रूप में तथा दृश्यता, मित कथन, संवादधर्मिता आदि कई रूपों में चिन्हित किया जा सकता है। किसी भी भाषा, साहित्य का विकास उसके आलोचनाझशास्त्र के बिना संभव नहीं होता। आलोचना शास्त्र के मानदंडों का निर्माण भाषाई समूह के विविध कलारूप तय करते हैं। हिन्दी भाषा की संचारात्मकता, शैली, वैज्ञानिक अध्ययन, जन संप्रेषणीयता, पटकथात्मकता के निर्माण, संवाद लेखन, दृश्यात्मकता, दृश्य भाषा, कोड निर्माण, संक्षिप्त कथन, विम्ब धर्मिता, प्रतीकात्मकता, भाषाझदृश्य की अनुपातिकता आदि मानकों को हिन्दी फिल्मी गीतों ने गढ़ा है। इंडियन डायसपोरा, विश्वस्तर पर एक नयी अवधारणा और सच्चाई है। हिन्दी फिल्मी गीत हिन्दी भाषा, साहित्य और संस्कृति का लोकदूत बनकर इन तक पहुँचने की दिशा में अग्रसर हैं। (फणीश्वरनाथ रेणु का रेखांकन 'लाइव बिहार' से साभार)

इन दिनो साहित्य में चिंतन कम, झंडाबरदारी ज्यादा

कोई शक नहीं कि फेसबुक ने कुछ-एक हवा-हवाई आलोचकों, कवियों और साहित्यकारों को एक बारगी साहित्य की बादशाहत सी सौंप दी है। वे उड़-उड़ कर अपनी स्थापनाएँ दे रहे हैं। उनकी दृष्टि में अभी तक लिखा गया साहित्य किसी भी रूप में साहित्य नहीं कहा जा सकता। आज का यथार्थ तो उसमें दूर-दूर तक नजर नहीं आता। इनमें से कुछ कवि-आलोचक पुरस्कृत हो चुके हैं और शायद, आजकल कुछ लिख-पढ़ रहे हैं। कुछ हैं, जो नये साहित्य की लालसा संजोए अभद्र सीडियों में अपना दिन जाया कर रहे हैं। इसलिए तथाकथित जनधर्मी रचनाकारों को भी वे पुरातनपंथी मानने लगे हैं। प्रकाशकों के पास पुरस्कार-आदि के पैसे अब नहीं हैं। उनका कहना है कि मोदी के नोट-बंदी और जीएसटी ने उन्हें बहुत हानि पहुंचायी है। अब वे रोटी के लिए भी भटक रहे हैं तो पुरस्कार कहाँ से दें। लेखकों के सुपरस्टार बनने का स्वप्न ऐसे टूटेगा, वे सोचे भी नहीं थे।

अनिल कुमार पाण्डेय

यह ऐसा दौर है साहित्य-संस्कृति का, जहाँ अपनी धुर व्यवसायी नीतियों की वजह से प्रकाशक बेनकाब हुआ है। उसकी जुगाड़बाजी प्रवृत्ति पर पाठकों की सशंकित निगाहें भारी पड़ रही हैं। बौखलाये हुए प्रकाशक अब धन-बल-छल के साथ मैदान में हैं। नवांकुरों पर डोरे डाल रहे हैं। प्रशंसा के लोभ में मजदूरी तक करने को बाध्य इस देश के युवा प्रतिष्ठित साहित्यकार बनने का स्वप्न संजोए उसकी चाटुकारिता पर उतर आए हैं। सब कुछ छोड़-छाड़ कर उनके द्वारा प्रकाशित किसी भी प्रकार की पुस्तक को क्रांतिकारी, जनधर्मी और सदियों से चली आ रही जड़-परम्परावादी सामाजिक-व्यवस्था-परिवर्तन का नया शस्त्र/ शास्त्र बता रहे हैं। यहीं से देखा जाए तो एक बार के क्षणिक उत्साह के बाद युवा भी गुमनाम की कगारी पर हैं।

इसमें भी कोई शक नहीं है कि फेसबुक ने कुछ-एक हवा-हवाई आलोचकों/ कवियों और साहित्यकारों को एक बारगी साहित्य की बादशाहत सी सौंप दी है। वे उड़-उड़ कर अपनी स्थापनाएँ दे रहे हैं। उनकी दृष्टि में अभी तक लिखा गया साहित्य किसी भी रूप में साहित्य नहीं कहा जा सकता क्योंकि गलियों का समाजशास्त्र तो उसमें कहीं दिखाई ही नहीं देता, न तो नायिकाओं के कपड़े आदि को उतरवाया गया और न ही तो सवर्णों को लाठी-डंडा लेकर दौड़ाया गया। प्रेमी जोड़े जैसे आज के समय के यथार्थ तो उनमें दूर-दूर तक नजर नहीं आते। इनमें से कुछ पुरस्कृत हो चुके हैं तो शायद आजकल कुछ लिख-पढ़ रहे हैं। कुछ हैं, जो नये साहित्य की लालसा संजोए पोर्न कंटेंट और सांप्रदायिक उन्माद से भरी सीडियों में अपना दिन जाया कर रहे हैं। अब सारी क्रांति और पुरुष सत्ता को चुनौती उन्हें अन्तर्वासना डॉट कॉम पर ही मिल जाया करती है, इसलिए इधर के तथाकथित जनधर्मी रचनाकारों को भी वे पुरातनपंथी मानने लगे हैं। प्रकाशकों के पास पुरस्कार-आदि के पैसे अब नहीं हैं। उनका कहना है कि मोदी के नोट-बंदी और जीएसटी ने उन्हें बहुत हानि पहुंचायी है। अब वे रोटी के लिए भी भटक रहे हैं तो पुरस्कार कहाँ से दें। लेखकों के सुपरस्टार बनने का स्वप्न ऐसे टूटेगा, वे सोचे भी नहीं थे।

प्रायोजित लेखकों/ कवियों के लिए यह अधिक चिंता की बात है। वे शोक-संतप्त हैं। परिवर्तन का नारा उछालने वाले लोगों के लिए भी इधर उनकी गुमनामी विचलित कर रही है। बहुत से तथाकथित कवि/कहानीकार/ साहित्यकार अधिक चिंतित हो उठे हैं अपने भविष्य को लेकर। कौन उनका मूल्यांकन करेगा? कौन प्रायोजित साहित्य को मौलिक और चिंतनपरक साहित्य की उपाधि से विभूषित करने वाले कशीदे पढ़ेगा? कौन उन्हें भगत सिंह, प्रेमचंद, मुक्तिबोध, नागार्जुन की परंपरा का वारिश सिद्ध करेगा? उनकी दृष्टि में सच कहा जाए तो प्रकाशक के कुछ तत्कालीन /आपातकालीन लुभावनी घोषणाओं के बाद युवा आलोचकों का अदृश्य हो जाना साहित्य के लिए बहुत खतरनाक और हानिकारक साबित हो रहा है।

यह वाकई एक तरह से संक्रमण और साहित्यिक अस्मिता के विचलित होने का काल है। एक तरफ जहाँ तथाकथित जनधर्मी कवि-आलोचक की प्रवृत्ति शक के दायरे में है, उन्हें बचाने और सुरक्षित रखने के लिए उन्हीं की कटेगरी के लोग बीच-मैदान में आकर गप्पबाजी करने लगे हैं, वहीं दूसरी तरफ ऐसे साहित्यकारों के प्रकाशक अपनी तथाकथित जनधर्मी प्रवृत्ति को सुरक्षित रखने के लिए पुनर्विचार और पश्चाताप करने के मूड में लोभ-बयानी कर रहे हैं। उनकी दृष्टि में साहित्यकार साक्षात देवता हैं। उनके ऊपर किसी भी प्रकार का आरोप-प्रत्यारोप लगाना सनातन और शाश्वत परंपरा को ठेस पहुंचाना है। वे मानते हैं कि साहित्यकार सरकार और सत्तापक्ष की कुनीतियों का विरोध करता है, इसलिए उसे किसी भी प्रकार का अपराध करने की छूट होनी चाहिए, उसे सजा नहीं दी जानी चाहिए क्योंकि वह बंधन मुक्त समाज और स्वच्छन्द परिवेश के निर्माण में साहित्य-लेखन का भागीरथ प्रयत्न कर रहा है।

दरअसल, साहित्य और संस्कृति की सेवाओं में रत कुछ विशेष लोगों के कुछ अपने पैमाने होते हैं। इन पैमानों के दायरे में एक काल विशेष में कुछ ऐसे साहित्यकार पैदा कर दिए जाते हैं जिनमें चिंतन की प्रवृत्ति कम, झंडेबाजी के गुण अधिक पाए जाते हैं। सेमिनारों, संगोष्ठियों और विभिन्न प्रकार के साहित्यिक कार्यक्रमों में ऐसे ही लोगों को अधिक आमंत्रित किया जाता है। उन्हें विभिन्न सेवाओं के साथ-साथ मोटी रकम भी दी जाती है ताकि अवसर पड़ने पर उनके पक्ष में लॉबी बना सकें। यह भी सच है कि इधर के दिनों में साहित्य की मठाधीशी खतरे में पड़ी है। कुछ नये मठ भी बन रहे हैं उधर भी प्रवेश की तकनीक भिड़ाई जा रही है। प्रवेश और निष्कासन की प्रक्रिया में गुटबाजी का सिलसिला चल पड़ा है।

पाठक इन स्पष्ट गुटों में विभाजित होकर नारेबाजी के मूड में दिखाई दे रहा है। खुशी की बात है कि कुछ नए प्रकाशक भी मार्किट में पदार्पण किये हैं। अब देखना ये है कि वे किस तरह से अपनी पैठ बना पाते हैं। स्वघोषित भगवानों का दौर तो गुजरे जमाने की बात हो गयी है। लोक के पास भगवान तो है लेकिन उसे ढोंगी और जड़ परम्परावादी कहकर खारिज किया जा रहा है। यह और विडंबना की बात है कि खारिज करने वाला स्वयं मंदिर और मस्जिद का चक्कर लगा रहा है।

साहित्य-संस्कृति का ऐसा दौर यह जिसमें सब संशय में हैं, सब भ्रम में हैं। साहित्य तेरा भला हो जो इस दौर में भी निष्पक्षता के दायरे में है अन्यथा तो इक्कीसवीं सदी के इस युग में तमाम जीवन-माध्यम स्वयंश्रेष्ठ मानकर इस युग की अंध दौड़ में विलीन हो चुके हैं। तूं शाश्वत है बना रह। हम भी थोड़ा बहुत प्रयास करते हैं, प्रकाशकों की चाल और तथाकथित जनधर्मियों की ढाल से सुरक्षित रहने और प्रशंसा पाने के लोभ से बचने की कोशिश में, कुछ पुराने कवियों को पढ़ते-गुनते हैं। लोकभाषा और लोक-संस्कृति की तरफ रुख करते हैं। साहित्यिक जीवन कुछ ऐसा ही मांगता है।

(संपर्क - 8528833317)

जन-गण-मन में जो स्थापित, वही श्रेष्ठ और सुप्रतिष्ठित

सम्मान और पुरस्कार तो मिठाई के डिब्बे की तरह

एक सवाल लगातार बड़ा होता जा रहा है कि जो श्रेष्ठतर साहित्य-साधना के बावजूद वंचित यथोचित सम्मान से किनारे मान लिए जा रहे हैं, जिन्हें हम मुद्दत से पढ़ते-लिखते-जानते आ रहे हैं, जो जन-गण-मन में सुप्रतिष्ठित हैं, क्या अब उनके सम्मान का जमाना नहीं रहा? यद्यपि एक श्रेष्ठ-सच्चे रचनाकार के लिए सांस्थानिक कर्मकांडों से ज्यादा श्रेष्ठ और गरिमामय होती है, सुधी पाठकों के मन-प्राण पर, समय की शिला पर उसके शब्दों की अमिट छाप। फिलहाल, इस प्रश्न पर क्या कहते हैं, प्रतिष्ठित नवगीतकार माहेश्वर तिवारी, अष्टभुजा शुक्ल, संजय चतुर्वेदी, भारतेंदु मिश्र, ज्ञानचंद्र मर्मज्ञ, नुसरत मेंहदी, मनोहर अभय आदि, आइए उनके ही शब्दों में जानते हैं।

प्रतिष्ठित नवगीतकार माहेश्वर तिवारी कहते हैं कि कथन के मूल आशय से किसी को असहमति नहीं होनी चाहिए लेकिन एक प्रश्न फिर भी बचा रहता है कि पाठक कौन है और उसकी अभिरुचि किस स्तर की है। एक समय गुलशन नन्दा का एक बड़े वर्ग पर प्रभुत्व था। उनकी रचनाओं का उनका पाठक वर्ग बेसब्री से इंतजार करता था। जासूसी उपन्यासकार ओमप्रकाश शर्मा का भी यही हाल था। पुरस्कार विवादों से कभी मुक्त नहीं रहे लेकिन

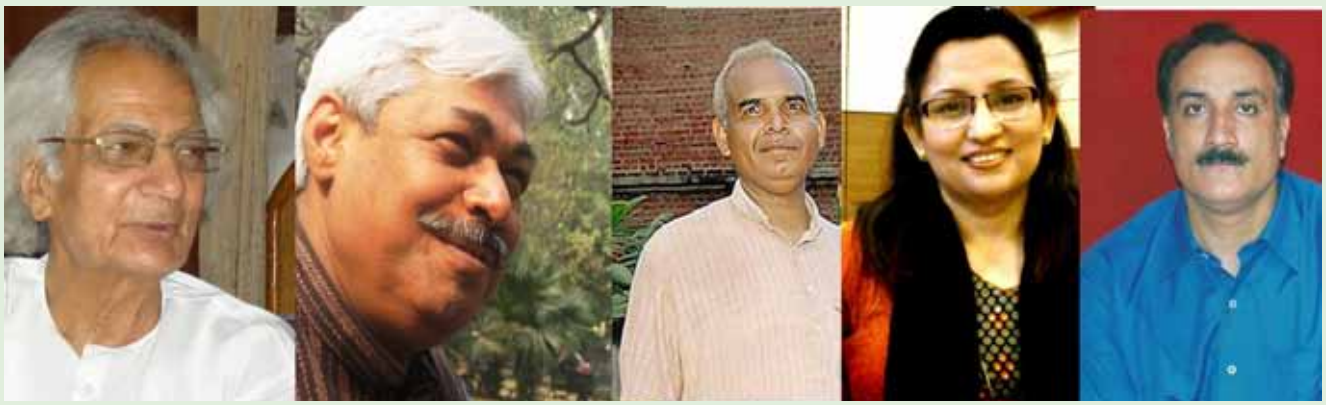

यह भी सच है कि जिन्हें पुरस्कृत किया गया, उनमें से कई लोगों को पुरस्कृत कर सम्मान अपने आप में सम्मान का भागी बना है। वरिष्ठ कवि अष्टभुजा शुक्ल कहते हैं - जहां तक पुरस्कारों की राजनीति का सवाल है तो साहित्य के पुरस्कारों में हार-जीत की प्रतिस्पर्धा नहीं होती लेकिन पहले के साहित्यिक प्रयोजन में - यशसेअर्थकृते भी एक प्रयोजन माना गया है, जो अब एकमात्र प्रयोजन तक सिमटता जा रहा है। बहुत सा पढ़ा-लिखा वर्ग अब ऐसा है, जिसके पास प्रचुर भौतिक संसाधन हैं और वह यश की महत्वाकांक्षा से पीड़ित है। उसे लगता है कि साहित्य में अमर हो जाने के मौके कुछ ज्यादा हैं। अतः प्रतीकात्मक धनराशि वाले पुरस्कार भी यशाकांक्षा पूरी कर देते हैं। इससे त्वया-मया वाले संबंध खूब पनपते हैं। यहां तक कि सांत्वना पुरस्कारों का भी प्रचलन हौसलाआफजाई के लिए शुरू किया गया। मेरा व्यक्तिगत मत यह है कि आज के जमाने में किसी भी पुरस्कार की राशि यदि 11000 से कम है तो यह साहित्य की अवहेलना है। रही बात प्रतिष्ठित पुरस्कारों की तो एक ही समय में अलग-अलग ढंग से लेखक स्तरीय लेखन करते हैं। ऐसे में किसी एक का चयन सर्वथा मुश्किल होता है। ऐसे पुरस्कारों में कभी लेखक का व्यक्तित्व और छवि तो कभी उसके साहित्यिक संबंध जैसे कारक भी निर्णायक भूमिका अदा करते हैं और सर्वश्रेष्ठता का मानक भी अभिरुचियों पर निर्भर करता है। इस दृष्टि से कोई भी निर्णय सर्वमान्य नहीं हो सकता।

पुरस्कारों को लेकर प्रायः रचनात्मक योग्यता, वरिष्ठता और पारदर्शिता के सवाल पर जानी मानी शायरा नुसरत मेंहदी का कहना है कि कमियां दोनों ओर हैं। जिस प्रकार से सम्मान एवं पुरस्कार प्राप्ति हेतु कुछ योग्य एवं अयोग्य साहित्यकार, कवि, लेखक, कलाकार साम-दाम-दण्ड-भेद सब अपना रहे हैं और अपने प्रयासों में प्रायः सफल भी हो रहे हैं, उससे सम्मानों और पुरस्कारों के चयन की प्रक्रिया की विश्वसनीयता और पारदर्शिता पर प्रश्नचिन्ह लगना स्वाभाविक है। ऐसे वातावरण में यदि उपरोक्त कार्य योग्यता और गुणवत्ता के आधार पर भी किया जाए तो विवाद के घेरे में आ जाता है। दूसरी ओर बहुत से साहित्यकारों, कवियों, लेखकों, कलाकारों की स्व-स्तुति और आत्ममुग्धता इतनी बढ़ गई है कि वे अपने अतिरिक्त किसी को सम्मान योग्य नहीं समझते। ऐसे लोगों के सामने कोई दलील कोई औचित्य प्रस्तुत करने से भी कोई लाभ नहीं होता। कवि-लेखक फारुख आफरीदी कहते हैं- सांस्थानिक पुरस्कार श्रेष्ठ साहित्य के मानक निर्धारित नहीं करते बल्कि पाठकों के मन को छूने वाली रचनाएँ या कृतियाँ ही असल में मानक होती हैं। नवगीतकार डॉ मधुसूदन साहा कहते हैं कि रचना और रचनाकार का असली पुरस्कार है पाठकीय प्रतिक्रिया न कि सांस्थानिक पुरस्कार। पुरस्कार प्राप्त करने के तो कई तरीके हो सकते हैं परन्तु पाठकीय प्रतिक्रिया केवल अच्छी रचना को ही मिलती है। कवि मनोहर अभय अपनी चार पंक्तियों से प्रश्न का सामना करते हैं-

स्वामिभक्त श्रीमान को सारस्वत सम्मान
पेट बाँध कर लिख रहे प्रेमचंद गोदान
पद्म विभूषण अकादमी पुरस्कार सम्मान
कविता के प्रभु बन गए नए मूल्य प्रतिमान

डॉ रामानंद तिवारी का कहना है कि जब किसी रचनाकार की रचनात्मकता की भावक छवि पाठक के हृदय में उतरती है तभी उसके रचनात्मक मूल्य का वास्तविक रसोद्रेक होता है। बिर्खा खडका डुवसेर्ली लिखते हैं कि सम्मानित साहित्यकार श्रेष्ठ होते हैं लेकिन असम्मानित ऐसे साहित्यकार हैं जो श्रेष्ठतर हैं ही, अनुकरणीय भी हैं। ज्ञानचंद मर्मज्ञ की दृष्टि से पुरस्कार किसी की साहित्यिक क्षमता का मापदण्ड कदापि नहीं हो सकता। दिल्ली के कवि संजय चतुर्वेदी प्रश्न के निहितार्थ से सहमत होते हुए विनम्र आग्रह करते हैं कि ₹वंचित या उपेक्षित₹ जैसे विशेषणों को उनसे दूर रखा जाय। वे अपनी राह चलने वाले

लोग हैं - वैसे ही उन्हें देखा जाए - सम्मान या मान्यता मिले न मिले। भारतेंदु मिश्र लिखते हैं कि सरकारी सम्मान और पुरस्कार मिठाई के डिब्बे की तरह होते हैं। इसका सम्बन्ध रचनाकार की योग्यता, उसके काम आदि से प्राय; नहीं होता। सरकार कोई भी हो अपने चाहने वालों को मिठाई का डिब्बा बांटती है। राजस्थान के कवि महेंद्र नेह कहते हैं कि सरकारी पुरस्कार लेने वाले कलाकार -साहित्यकारों में अधिकाँश जुगाडू होते हैं। उनका दर्जा राज दरबारों में राजाओं-सामंतों की अभ्यर्थना करने वाले भाट- चारणों से अधिक नहीं होता। जनता का सच्चा लेखक सरकारी पुरस्कारों की परवाह नहीं करता। सत्ता ऐसे लेखकों की हमेशा उपेक्षा करती आई है, लेकिन जनता ने उन्हें अपार सम्मान दिया। भारतेंदु, निराला, प्रेमचंद, मुक्तिबोध इसी कोटि के रचनाकार थे ।जिस नोबल पुरस्कार के लिए लेखक लालायित रहते हैं, उसे सार्त्र ने आलू का बोरा कह कर लौटा दिया। महान जन रंगकर्मी यादव चन्द्र ने बिहार नाट्य अकादमी के सर्वोच्च पुरस्कार को दृढ़ता पूर्वक ठुकरा दिया था।

युवा कवि अवनीश त्रिपाठी कहते हैं कि मैं तो साफतौर पर यही मानता हूँ कि जिस रचनाकार के पास पाठक नहीं, वो कितना ही बड़ा पुरस्कार पा जाए, उसकी श्रेष्ठता का मूल्यांकन इस आधार पर नहीं हो सकता। सही मूल्यांकन तो पाठक ही तय करता है। आज के समय में ऊल-जुलूल लिखकर असाहित्यिक लोगों ने पाठकों की रुचि को लगभग समाप्त कर दिया है। अब पाठक उस तरह से किसी रचनाकार का इंतजार नहीं करते जैसा कि पहले किया करते थे। यह अवमूल्यन भी अवलोकनीय है। हम इससे भी इनकार नहीं कर सकते कि अपने लिए पाठकवर्ग तैयार ही नहीं कर पा रहे। रही सम्मान की बात तो समस्त सम्मान गलत हाथों में नहीं हैं। कुछेक ऐसे लोगों को भी मिले हैं, जो वास्तव में हकदार हैं और अभी तक समझौतावादी नहीं हुए हैं।

ऐसी ही शब्द-संस्कृति विक्षुब्ध कवि बोधिसत्व एक सांस्थानिक पुरस्कार लौटाते हुए लिखते हैं कि सरकारी पुरस्कारों की वापसी पर बात बहुत हुई लेकिन निजी संस्थानों के सम्मान का संसार भी बेहद अंधकार आच्छादित है, जिन पर सब मूक-मौन रहते हैं। 2014 में घोषित कविता का शमशेर सम्मान सखेद और भारीमन से अस्वीकार कर रहा हूँ। पुरस्कार वापसी के पीछे केवल एक कारण है कि मैं पुरस्कार संयोजक की अकांक्षाओं को पूरा करने में असमर्थ हूँ। काव्येतर कारणों से मुझे यह सम्मान दिया जाना था और मुझे सम्मान से उपकृत करने के लिए तत्कालीन ज्यूरी में भी बदलाव किए गए। तत्कालीन निर्णायक अग्रजों से भी मुआफी मांगता हूँ। यह ₹शमशेर सम्मान₹ और ऊँचाइयों को छुए। यही शुभाकांक्षा है। 'जो नहीं है, उसका गम क्या, जैसे कि सुरुचि' शमशेर की उक्त पंक्तियों के साथ विनम्र अस्वीकार। कुछ ऐसी ही स्थितियों ने तमिल कवि इंकलाब के परिजनों को विचलित कर दिया था, जिससे उन्होंने साहित्य अकादमी अवार्ड लेने से मना कर दिया। उन्हें यह सम्मान मरणोपरांत देने की घोषणा की गई थी। उनके परिवार का कहना था कि इंकलाब ऐसी सरकार से कभी कोई सम्मान नहीं लेते थे। गौरतलब है कि 72 साल की उम्र में इंकलाब की मृत्यु हो गई थी। एक अखबार के मुताबिक इंकलाब मार्क्सवादी साहित्यकार थे और खुद के तमिल होने पर गर्व करते थे। वह कथित तौर पर वानमपड़ी नामक कविता आंदोलन से भी जुड़े थे। वह चेन्नई के न्यू कॉलेज में तमिल प्रोफेसर के तौर पर भी काम कर चुके थे। इंकलाब के साथ काम कर चुकी और उनके नाटकों का निर्देशन करने वालीं थिएटर कलाकार मनगई कहती हैं कि जब वह जीवित थे, तब यह सम्मान उन्हें दिया जाना चाहिए था। तब वह इसे स्वीकार करते या लौटा देते, यह अलग बात होती लेकिन हम जानते हैं कि कई बार अवार्ड के लिए उनके नाम पर विचार किया गया लेकिन उनका नाम सिर्फ इसलिए खारिज कर दिया गया कि वह लोगों के साथ खड़े रहते थे और अपनी रचनाओं में उनकी आवाज उठाते थे। इंकलाब ट्रस्ट संभालने वाली उनकी बेटी अमीना का कहना है कि मेरे पिता कहा करते थे कि अपनी रचनाओं के लिए अवार्ड पाने की चाहत उन्होंने कभी नहीं की। इसकी जगह उन्हें आलोचना और आरोप ही झेलने पड़े।

कविता को लेकर, जितना जो भी कहा गया

मनोज जैन मधुकर/राजा अवस्थी

विगत अंक में प्रकाशित कटनी के प्रतिष्ठित जनकवि राम सेंगर का एक विस्तृत नवगीत 'कविकुंभ' में प्रकाशित होने के बाद कवि-गीतकारों में लंबी बहस सी चल पड़ी। गीत-नवगीत-जनगीत को लेकर वैसे भी कवितावादी समुदाय सिरे से नाक-भौंहें नचाता रहा है। राम सेंगर की कविता उसी के मर्म उधेड़ती है। कविता की कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं -

कविता को लेकर,जितना जो भी कहा गया,
सत-असत नितर कर व्याख्याओं का आया।

कविकर्म और आलोचक की रुचि-अभिरुचि का
व्यवहार-गणित पर कोई समझ न पाया।

'कविता क्या है' पर कहा शुक्ल जी ने जो-जो,
उन कसौटियों पर खरा उतरने वाले।
सब देख लिए पहचान लिए जनमानस ने
खोजी परम्परा के अवतार निराले।

विस्फोट लयात्मक संवेदन का सुना नहीं,
खंडन-मंडन में साठ साल हैं बीते।
विकसित धारा को खारिज कर इतिहास रचा
सब काग ले उड़े सुविधा श्रेय सुभीते।

जनमानस में कितना स्वीकृत है गद्यकाव्य
विद्वतमंचों के शोभापुरुषों बोलो।
मानक निर्धारण की वह क्या है रीति-नीति,
कविता की सारी जन्मपत्रियां खोलो।

कम्बल लपेट कर साँस गीत की मत घोटो,
व्यभिचार कभी क्या धर्मनिष्ठ है होता।
कहनी-अनकहनी छल का एल पुलिंदा है,
अपने प्रमाद में रहो लगाते गोता।

बौद्धिक, त्रिकालदर्शी पंडित होता होगा,
काव्यानुभूति को कवि से अधिक न जाने।
जो उसे समझने प्रतिमानों के जाल बुने,
जाने-अनजाने काव्यकर्म पर छाने।

गतिरोध बिछा कर मूल्यबोध संवेदन का,
कोने में धरदी लयपरम्परा सारी।
वह गीत न था, तुम मरे स्वयंभू नामवरो
छत्रप बनकर कविता का इच्छाधारी।

इस छंदमुक्ति में, गद्य बचा कविता खोयी,
सब खोज रहे हैं,अंधे हों या कोढ़ी।
काव्यानुभूति की बदली हुई बनावट की,
नवगीति पीठिका खेल-खेल में तोड़ी।

गति लय स्वर शब्दसाधना की देवी कविता,
कविता से कवितातत्व तुम्हीं ने खींचे।
कविता न कथ्य का गद्यात्मक प्रक्षेपण है
कविता, कविता है, परिभाषाएं पीछे।

जड़ काटी है तुमने गीतों की सोच-समझ
यह विधा दूब थी, तो भी पनपी फैली।
लय,कथ्य-शिल्प के प्रगतिमार्ग की रूढ़ि नहीं
है रूढ़ समीक्षा,विगलित और विषैली।

राम सेंगर की यह कविता काफी लंबी है। बहरहाल, इस पर मध्य प्रदेश के नवगीतकार मनोज जैन मधुकर लिखते हैं कि कवि राम सेंगर की यह महत्वपूर्ण कविता 'कविकुंभ' ने प्रकाशित की, जो नकली कवियों और घेराबंदी या कहें तो खेमेबाज आलोचकों की अच्छी खैर-खबर लेती है। इस कविता को पढ़कर नकली कवि, अकवि और स्वयंभू आलोचक मौन ही रहेंगे, यह मेरा अपना विश्वास है। राम सेंगर यह सब इसलिए लिख सके क्योंकि वे मंचीय और नकली कवि नहीं न पर्ची देखकर काव्यपाठ करते हैं, उन्होंने नवगीत को जिया है, उनकी अपनी विचारधारा है, न वे किसी खेमे में हैं और न किसी विवाद में। समालोचना का एक पक्ष यहाँ मैं भी रखना चाहता हूँ। छंद में लिखने वाले कवि नई कविता लिखने वालों की अपेक्षा अपनी समालोचना सुनकर तिलमिला जाते हैं बजाय अपनी गलती स्वीकारने की अपेक्षा और फिर घेरा बनाकर वार करते हैं, यह भी सौ फीसदी सही। एक बार एक महान कवि ने आँखों के साथ चस्पा शब्द का असंगत प्रयोग किया। उसकी टाइमलाइन पर जब उसे सुझाव दिया गया तो वह बुरी तरह बिफर गया। बौखला गया। सुझाव देने वाला सुझाव भर देता है ,मानने न मानने के लिए बाध्य नहीं करता। ऐसे ही एक अन्य महान कवि सूचियों का तुकांत रूचियों से जोड़ते हैं। बहरहाल, आलोचना पर सम्यक बात हो। मेरी अपनी दृष्टि में यदि हम अपनी समृद्ध परम्परा को छोड़ दें तो आज के कवि जो मंचीय हैं, सबके सब नकली ही हैं। फिर चाहे वे किसी पत्रिका का सम्पादन ही क्यों न कर रहे हों क्योंकि न तो उनके पास विचारधारा है और न ही अपना स्वयं का दृष्टिकोण, न दृष्टि।

जगदीश जैन्ड 'पंकज' लिखते हैं कि छान्दसिक कविता को हाशिये पर डालकर स्वयम्भू आलोचकों और कवियों द्वारा निर्धारित किये गए प्रतिमानों की निरर्थकता पर चोट करती सार्थक कविता लिखी है राम सेंगर ने। लय और गेयता की रक्षा करते हुए। तथाकथित मुख्यधारा की नग्न सपाटबयानी की कविता के पोषकों पर प्रहार करते हुए गीत-नवगीत की शाश्वतता को प्रतिष्ठित किया है उन्होंने। कृष्ण बक्षी का कहना है कि राम सेंगर ने कम से कम आवाज तो उठाई। मैं उनकी कविताओं पर बधाई देता रहा हूँ, जो आज के नकलीपन से बहुत दूर हैं। आलोचक तो हम गीतकारों के गीत को कविता ही नहीं मानते। गीत से दोयम दर्जे का व्यवहार करना और नकारना उनके लिये लगता है शायद बहुत जरूरी है।

राजा अवस्थी लिखते हैं, बिल्कुल सच कह रहे हैं मनोज जैन मधुकर। राम सेंगर की कविता कई कोणों से विश्लेषणात्मक विवेचना करती है। इस अकेली कविता पर एक सार्थक बहस, सार्थक संवाद कविता के मर्म व उसके वास्तविक स्वरूप को समझने के साथ कविता के नाम पर फैलाए गए भ्रम व भ्रमकारों को बेनकाब करने के लिए बहुत जरूरी है लेकिन उनके साथ-साथ वास्तविक कविताधर्मी साहित्यकार भी चुप ही रहेंगे। यह बहुत महत्वपूर्ण बातें करती हुई महत्वपूर्ण कविता है। अशोक व्यग्र का कहना है कि जिस जीवन में अनुशासन नहीं वह जीवन व्यर्थ है। जिस रचना में छन्द नहीं, वह रचना भी उसी भाँति व्यर्थ है। छन्दविहीन होना ही नश्वरता है। छन्दबद्ध ही शाश्वत सम्भव है किन्तु छन्द भी मात्र अर्थद्योतक व लय या मात्रा में कह देना नहीं अपितु उसकी पूर्णता व सार्थक्य उसके मन्त्रात्मक शब्द संयोजन में है। राम सेंगर का गीत इन्हीं तथ्यों का पर्याय है।